



---

## मंगल-प्रभात

---

### गांधीजी

अनुवादक

अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी

जो चीज आत्मा का धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणों से आत्मा को जिसका भान नहीं रहा, उसके पालन के लिए व्रत लेने की जरूरत होती है.

पहली आवृत्ति, १९५८

### मुद्रक और प्रकाशक

विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-३८० ०१४

फोन: ०७९-२७५४०६३५, २७५४२६३४

E-mail: [sales@navajivantrust.org](mailto:sales@navajivantrust.org)

Website: [www.navajivantrust.org](http://www.navajivantrust.org)



## निवेदन

गांधीजी के विचार आसान हिन्दुस्तानी में जनता के सामने रखना 'गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, दिल्ली' के अनेक कामों में से एक खास काम है। गांधीजी अक्सर आसान भाषा में ही लिखते थे। उन्होंने गुजराती भाषा में जो लिखा है, वह बिलकुल सरल है। फिर भी मुमकिन है कि गुजराती, हिन्दी और दूसरी भाषाओं में जो शब्द आसानी से समझे जाते हैं, वे सिर्फ उर्दू जाननेवालों के लिए नए हों। इसीलिए अनुवाद में ऐसे शब्दों के साथ साथ आसान उर्दू शब्द भी देना ठीक समझा है। उम्मीद है कि इस तरह उर्दू जबान हिन्दी के नज़दीक आएगी और उर्दू जाननेवाली जनता हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं का साहित्य भी आसानी से समझ सकेगी।

६-६-१९५८

काका कालेलकर

बम्बई



## अनुक्रमणिका

- निवेदन  
'मंगल-प्रभात'
- १ सत्य
  - २ अहिंसा
  - ३ ब्रह्मचर्य
  - ४ अस्वाद
  - ५ अस्तेय (चोरी न करना)
  - ६ अपरिग्रह (जमा न रखना)
  - ७ अभय
  - ८ अस्पृश्यता-निवारण
  - ९ जात-मेहनत
  - १० सर्वधर्म-समभाव-१
  - ११ सर्वधर्म-समभाव-२
  - १२ नम्रता
  - १३ स्वदेशी
  - १४ स्वदेशी-व्रत
  - १५ व्रत की जरूरत
- परिशिष्ट  
शब्दों के अर्थ



## ‘मंगल-प्रभात’

गांधीजी ने यरवडा जेल का नाम ‘यरवडा मंदिर’ रखा था। वहाँ उन्हें बाहर के कुछ अखबार पढ़ने को मिलते थे और आश्रम से खत भी अच्छी तादाद में आते थे; फिर भी हम कह सकते हैं कि वह फूरसत का समय उन्होंने सूतयज्ञ में, चरखे की भक्ति में और गीता के चिंतन में ही बिताया। उस अरसे में साबरमती आश्रम के जीवन में ज्यादा जान फूंकने की जरूरत है, ऐसी मांग दो-एक भाईयों की ओर से आने से उन्होंने आश्रमवासियों को हफ़तेवार खत लिखना शुरू किया। कोई भी काम शुरू किया जाए तो वह बराबर होते रहना चाहिए, ऐसा गांधीजी का आग्रह होने से हर मंगल को सुबह की प्रार्थना के बाद एक प्रवचन लिख भेजने का उन्होंने संकल्प<sup>१</sup> किया। उस संकल्प का पहला फल है आश्रम के व्रतों<sup>२</sup> पर उनका यह भाष्य<sup>३</sup>। पहले यह ‘व्रत-विचार’ के नाम से छपा था।

नमूनेदार-आदर्श-कैदी की हैसियत से सरकार को सब तरह से अभय-दान देनेवाले<sup>४</sup> गांधीजी ने जेल में से स्वदेशी के बारे में कुछ भी न लिखने का तय किया था। इसीलिए ‘व्रत-विचार’ में स्वदेशी की बात रह गई थी। बाहर आकर उन्होंने स्वदेशी-व्रत पर एक लेख लिखा, जो ‘नवजीवन’ में छपा है। अबकी बार वह लेख इस पुस्तक में शामिल करके आश्रम-व्रतों की विचारणा<sup>५</sup> पूरी की है।

जैसे कि ऊपर कहा गया है, ये प्रवचन मंगलवार के प्रभात को लिखे जाते थे, इसीलिए इस प्रवचन-संग्रह<sup>६</sup> का नाम ‘मंगल-प्रभात’ ही रखा गया है। हमारे कौमी जीवन में जब निराशा<sup>७</sup> का घोर साम्राज्य फैला था, तब जिन व्रतों ने राष्ट्रीय जीवन में आशा, अपने-आप पर भरोसा, फुर्ती और धार्मिकता<sup>८</sup> की हवा पैदा की, उन्हीं व्रतों ने एक नयी संस्कृति-नये तमदुन का मंगल-प्रभात शुरू किया, ऐसा अगर हम मानें तो वह कुछ ज्यादा न होगा।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

१. पक्का इरादा, २. अहदों, ३. तफ़सीर, ४. सलामती बख़्शनेवाले, ५. तफ़सीर, ६. मज़मूआ, ७. मायूसी, ८. दीनदारी.



## सत्य

ता. २२-७-१९३०

सुबह की प्रार्थना के बाद

हमारी संस्था<sup>१</sup> का मूल ही सत्य के आग्रह में, सच्चाई पर क्रायम रहने में रहा है। इसीलिए मैं सत्य को ही पहले लेता हूँ।

‘सत्य’ शब्द सत् से बना है। सत् यानी होना। सत्य यानी हस्ती। सत्य के सिवा और किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। परमेश्वर का सही नाम ही ‘सत्’ यानी ‘सत्य’ है। इसीलिए परमेश्वर ‘सत्य’ है ऐसा कहने के बजाय ‘सत्य’ ही परमेश्वर है ऐसा कहना ज्यादा ठीक है। (लेकिन) राजकर्ता या सरदार के बगैर हमारा काम नहीं चलता। इसीलिए ‘परमेश्वर’ नाम ज्यादा चल पड़ा है और चलेगा। लेकिन सोचने पर तो (लगेगा कि) ‘सत्’ या ‘सत्य’ नाम ही सही है और वही पूरा अर्थ देनेवाला है।

और जहाँ सत्य है वहाँ ज्ञान<sup>२</sup> – शुद्ध ज्ञान – है ही। जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान कभी नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर नाम के साथ ‘चित्’ यानी ज्ञान, इल्म शब्द जोड़ा गया है। और जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ ‘आनंद’ ही होता है; शोक, रंजोगम हो ही नहीं सकता। और सत्य सदा-हमेशा है, इसलिए आनंद भी हमेशा है। इसीलिए ईश्वर को हम सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनंद) नाम से भी पहचानते हैं।

इस सत्य की भक्ति के खातिर ही हमारी हस्ती हो। उसी के लिए हमारा हर एक काम, हर एक प्रवृत्ति हो। उसी के लिए हम हर साँस लें। ऐसा करना हम सीखें तो दूसरे सब नियमों के पास भी आसानी से पहुँच सकते हैं; और उनका पालन करना भी आसान हो जाएगा। सत्य के बगैर किसी भी नियम का शुद्ध पालन नामुमकिन है।

साधारण तौर पर सत्य यानी सच बोलना – इतना ही हम समझते हैं। पर हमने तो विशाल अर्थ में<sup>३</sup> सत्य शब्द का इस्तेमाल किया है। विचार में, बोलने में और बरतने में सच्चाई ही सत्य है। इस सत्य को पूरा-पूरा समझनेवाले के लिए जगत में और कुछ जानने को नहीं रहता, क्योंकि समूचा ज्ञान उसमें समाया हुआ है यह हमने ऊपर देखा। उसमें जो न समाए वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है; फिर उसमें सच्चा आनंद तो ही कैसे सकता है?

अगर इस कसौटी को बरतना हम सीख जाएँ, तो हमें तुरंत मालूम हो जाएगा कि कौनसा काम करने जैसा है और कौनसा छोड़ने जैसा; क्या देखने लायक है और क्या नहीं; क्या पढ़ने जैसा है और क्या नहीं।

लेकिन सत्य को, जो पारसमणि जैसा है, जो कामधेनु जैसा है, कैसे पाया जाए? उसका जवाब भगवान ने दिया है : अभ्यास<sup>४</sup> से और बैराग से। सत्य का यही चटपटी अभ्यास है; उसे छोड़कर दूसरी सब चीजों के बारे में बिलकुल उदासीनता – लापरवाही बैराग है। फिर भी हम देखते रहेंगे कि जो एक आदमी के लिए सत्य है वह दूसरे के लिए असत्य है। इससे घबराने का कोई कारण नहीं है। जहाँ शुद्ध कोशिश है वहाँ अलग-अलग दिखनेवाले सब सत्य एक ही पेड़ के अलग-अलग दिखनेवाले अनगिनत पत्तों के समान हैं। क्या परमेश्वर भी हर एक का अलग-



अलग नहीं दिखाई देता? फिर भी वह एक ही है यह हम जानते हैं | लेकिन सत्य नाम ही परमेश्वर का है | इसीलिए जिसे जैसा सत्य दिखाई दे उसके मुताबिक वह बरते इसमें दोष<sup>१</sup> नहीं हैं | इतना ही नहीं, वही उसका फ़र्ज है | फिर ऐसा करने में कोई ग़लती होगी भी, तो वह जरूर सुधर जाएगी; क्योंकि सत्य की खोज के पीछे तपस्या होने से खुद को दुःख सहना होता है, उसके पीछे मर मिटना होता है | इसलिए उसमें स्वार्थ<sup>२</sup> की तो गंध भी नहीं रहती | ऐसी निःस्वार्थ खोज करते हुए आज तक कोई ग़लत रास्ते आखिर तक नहीं गया है | ग़लत रास्ते गया तो उसे ठेस लगती ही है; और फिर से वह सीधी राह पर आ जाता है | इसीलिए जरूरी है सत्य की आराधना यानी (सत्य की) भक्ति | और यह भक्ति तो सिर का सौदा (शीश तणुं साटुं) है; या वह 'हरि का मार्ग' होने से उसमें कायर-डरपोक के लिए स्थान नहीं है, उसमें हार जैसी कोई बात ही नहीं है | वह तो मर कर जीने का मंत्र है |

पर अब हम करीब अहिंसा के किनारे आ पहुँचे हैं | उसका विचार हम अगले हफ़्ते करेंगे |

इस मौक़े पर हरिश्चंद्र, प्रह्लाद, रामचंद्र, इमाम हसन-हुसेन, ईसाई संतों वगैरह के दृष्टांतों<sup>३</sup> का हमें चिंतन<sup>४</sup> करना चाहिए | दूसरे हफ़्ते तक बालक – बड़े, स्त्री-पुरुष सब – चलते, बैठते, खाते-पीते, खेलते, सब कुछ करते, यह विचार-चिंतन करते ही रहें और ऐसा करते करते निर्दोष नींद लेनेवाले बन जाएँ, तो क्या ही अच्छा हो! वह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न-चिंतामणि (मनचाहा देनेवाला तिलस्माती रत्न) साबित हुआ है; हम सबके लिए वह वैसा ही साबित हो |

१. अंजुमन, २. इल्मओदानिश, ३. बड़े मानी में, ४. मश्क, ५. ग़लती, ६. खुदग़रज़ी, ७. मिसालों, ८. ग़ौर



## अहिंसा

ता. २९-७-१९३०

मंगल-प्रभात

सत्य का, अहिंसा का रास्ता जितना सीधा है उतना ही संकरा – तंग है; तलवार की धार पर चलने जैसा है। कलाकार जिस डोरी पर एक निगाह रखकर चल सकते हैं, उससे भी सत्य, अहिंसा की डोरी ज्यादा पतली है। ज़रासी गफलत हुई कि नीचे गिरे ही समझो। पल-पल की साधना<sup>१</sup> से ही उसके दर्शन हो सकते हैं।

पर सत्य के पूरे दर्शन तो इस देह से नामुमकिन हैं। उसकी तो सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है। छनजीवी<sup>२</sup> देह के ज़रिए शाश्वत<sup>३</sup> धर्म का साक्षात्कार – दर्शन संभव नहीं है। इसीलिए आखिरकार श्रद्धा<sup>४</sup> का उपयोग तो करना ही पड़ता है।

इसीलिए जिज्ञासु ने – जानने की इच्छा रखनेवाले ने – अहिंसा को पाया। मेरी राह में मुसीबतें आएँ उन्हें मैं झेलूँ, या उनके लिए जितना नाश<sup>५</sup> करना पड़े वह करता जाऊँ और अपना रास्ता तय करूँ? ऐसा सवाल जिज्ञासु के सामने पैदा हुआ। अगर वह नाश करता चला जाए तो वह रास्ता तय नहीं करता, लेकिन जहाँ था वहीं रहता है ऐसा उसने देखा। अगर मुसीबतें झेलता है तो वह आगे बढ़ता है। पहले ही नाश के वक्रत उसने देखा कि जिस सत्य को वह ढूँढ़ता है, वह बाहर नहीं बल्कि उसके भीतर है। इसलिए वह ज्यों ज्यों नाश करता चला जाता है, त्यों त्यों पिछड़ता जाता है, सत्य से दूर हटता जाता है।

चोर हमें सताते हैं तब उनसे बचने के लिए हम उन्हें सजा देते हैं। उस क्षण वे भाग ज़रूर जाते हैं, लेकिन दूसरी जगह डाका डालते हैं। लेकिन वह दूसरी जगह भी हमारी ही है, इसीलिए हम तो अंधेरी गली में ही टकराए। चोरों का उपद्रव<sup>६</sup> बढ़ता ही जाता है, क्योंकि उन्होंने तो चोरी को अपना पेशा मान लिया है। हम देखते हैं कि इससे बेहतर तो यह है कि चोरों का उपद्रव बरदाश्त किया जाए; ऐसा करने से चोरों को समझ आएगी। इतना सहन करने पर हम देखते हैं कि चोर कोई हमसे अलग नहीं है। हमारे लिए तो सब सगे हैं, मित्र – दोस्त हैं। उनको सजा नहीं दी जा सकती। लेकिन उपद्रव सहते जाना ही काफ़ी नहीं है। उसमें से तो कायरता<sup>७</sup> पैदा होती है। इसीलिए हम और एक विशेष<sup>८</sup> धर्म<sup>९</sup> महसूस करते हैं। चोर अगर हमारे रिश्तेदार हों, तो वह भावना

उनमें भी हमें पैदा करनी चाहिए। इसीलिए उन्हें अपनाने के तरीके ढूँढ़ने की तकलीफ़ हमें अवश्य उठानी चाहिए। यह है अहिंसा की राह। इसमें ज़्यादा और ज़्यादा दुःख न्योतने की ही बात आती है, अटूट धीरज सीखने की बात आती है। और अगर वह (धीरज) हममें रहा, तो आखिर चोर साहूकार बनता है, हमें सत्य का ज़्यादा साफ़ दर्शन होता है। इस तरह हम दुनिया को दोस्त बनाना सीखते हैं; हम ईश्वर की, सत्य की महिमा<sup>१०</sup> को ज़्यादा महसूस करते हैं; कठिनाइयाँ झेलने पर भी हमारी शांति, हमारा सुख बढ़ता है; हममें साहस, दिलेरी और हिम्मत बढ़ती है; हम शाश्वत – लाफ़ानी और अशाश्वत – फ़ानी का भेद ज़्यादा समझने लगते हैं; करने लायक और न करने लायक



को पहचानना हमें आता है | हमारा अभिमान<sup>११</sup> गल जाता है और नम्रता बढ़ती है; हमारा परिग्रह<sup>१२</sup> अपने-आप घट जाता है; और तन में भरा हुआ मैल सदा घटता जाता है |

यह अहिंसा आज हम जिसे मोटे तौर पर समझते हैं, सिर्फ़ वही नहीं है | किसी को कभी नहीं मारना, यह तो अहिंसा है ही | तमाम खराब विचार हिंसा है | जल्दबाजी हिंसा है | झूठ बोलना हिंसा है | द्वेष-बैर-डाह हिंसा है | किसी का बुरा चाहना हिंसा है | जिस चीज़ की जगत को ज़रूरत है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है | लेकिन जो कुछ हम खाते हैं वह जगत के लिए ज़रूरी है | जहाँ हम खड़े हैं वहाँ सैकड़ों सूक्ष्म<sup>१३</sup> जीव पड़े हैं और दुःखी होते हैं; वह जगह उनकी है | तो क्या हम आत्महत्या<sup>१४</sup> करें ? तो भी छुटकारा नहीं होता | अगर विचार में हम शरीर के तमाम लगाव छोड़ दें, तो आखिर में शरीर हमें छोड़ेगा | यह अमूर्छित<sup>१५</sup> स्वरूप ही सत्यनारायण है | यह दर्शन अधीरता<sup>१६</sup> से कभी हो ही नहीं सकता | तन हमारा अपना नहीं है, वह तो (दूसरे को देने के लिए मिली हुई) पराई चीज़ है, ऐसा समझकर उसका जो उपयोग हो वह करके हम अपनी राह तय करें |

मुझे लिखना तो था आसान ढंग से, लेकिन लिख गया मुश्किल ढंग से | फिर भी जिसने अहिंसा के बारे में ज़रा भी सोचा होगा, उसे यह समझने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए |

इतना सब जान लें ! बग़ैर अहिंसा के सत्य की खोज नामुमकिन है | अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत – तानेबाने की तरह एक-दूसरे में मिले हुए – हैं, जैसे कि सिकके के दो रुख या चिकनी चकती के दो पहलू | उसमें उलटा कौनसा और सीधा कौनसा ? फिर भी अहिंसा को हम साधन यानी जरिया मानें और सत्य को साध्य यानी मक़सद | साधन हमारे बस की बात है, इसलिए अहिंसा परम धर्म हुई और सत्य परमेश्वर हुआ | साधन की फिक्र अगर हम करते रहेंगे, तो साध्य के दर्शन हम किसी न किसी दिन ज़रूर करेंगे | इतना निश्चय किया कि हम जग जीते | हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आएँ, ऊपरी निगाह से देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे, तो भी हम विश्वास<sup>१७</sup> को न छोड़ते हुए एक ही मंत्र का जप करें – सत्य है | वही है | वही एक परमेश्वर है | उसका साक्षात्कार-दीदार करने का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है; उसे मैं कभी नहीं छोड़ूँगा | जिस सत्यरूप परमेश्वर के नाम से मैंने यह प्रतिज्ञा की है; वह इसे निभाने का बल दे |

१. तपस्या, रियाज़, २. क्षणिक, ३. हमेशा का, ४. अक्रीदा, एतकाद, ५. दूसरे की तबाही, ६. सताना, ७. बुजदिली, ८. खास, ९. फ़र्ज़, १०. बड़ाई, ११. खुदी, १२. जमा रखने की आदत, १३. बारीक, १४. खुदकुशी, १५. नागाफ़िल, १६. बेसब्री, १७. यकीन



## ब्रह्मचर्य

ता. ५-८-१९३०, य. मं.

मंगल-प्रभात

हमारे व्रतों में तीसरा व्रत ब्रह्मचर्य का है। हकीकत में दूसरे सब व्रत एक सत्य के व्रत से ही निकलते हैं और उसी के वास्ते हैं। जिस मनुष्य ने सत्य को पसंद किया है, जो उसी की उपासना (भक्ति) करता है, वह अगर उसे छोड़कर किसी और चीज की आराधना करता है, तो व्यभिचारी<sup>१</sup> साबित होता है। तब फिर विकार की आराधना तो हो ही कैसे सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्ति, सारा काम सत्य के दर्शन के लिए है, वह बच्चे पैदा करने के या घर-संसार, कुटुम्ब-कबीला चलाने के काम में कैसे पड़ सकता है? भोग-विलास से किसी ने सत्य को पाया हो ऐसी आज तक एक भी मिसाल हमारे सामने नहीं है।

या हम अहिंसा के पालन को<sup>२</sup> लें, तो उसका पूरा-पूरा अमल करना ब्रह्मचर्य के बिना नामुमकिन है। अहिंसा यानी सब जगह फैला हुआ, सर्वव्यापी प्रेम। जहाँ पुरुष ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुष को अपना प्रेम दे दिया, वहाँ उसके पास दूसरे के लिए रहा ही क्या? उसका मतलब यही हुआ कि 'हम दो पहले, दूसरे सब बाद में'। पतिव्रता स्त्री पुरुष<sup>३</sup> के लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री<sup>४</sup> के लिए सब-कुछ कुरबान करने को तैयार होगा, इसीलिए यह तो साफ़ है कि उसके द्वारा सर्वव्यापी प्रेम का पालन कभी नहीं हो सकेगा। वह सारी दुनिया को अपना कुटुम्ब बना ही नहीं सकेगा, क्योंकि उसका 'अपना' माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या बन रहा है। वह कुटुम्ब जितना बढ़ता है उतना ही सर्वव्यापी प्रेम में, विश्वप्रेम में खलल पहुँचता है। सारी दुनिया में ऐसा होता हुआ हम देख रहे हैं। इसीलिए अहिंसा-व्रत का पालन करनेवाला आदमी ब्याह नहीं कर सकता; तब फिर ब्याह से बाहर के विकारों का तो पूछना ही क्या?

तब जो लोग ब्याह कर बैठे हैं उनका क्या? क्या वे कभी सत्य को नहीं पाएँगे? क्या वे कभी भी सर्वापण – सब-कुछ न्योछावर – नहीं कर सकेंगे? हमने उसका रास्ता निकाला ही है। शादीशुदा – विवाहित लोग अविवाहित जैसे बन जाएँ। इस दिशा में इससे बढ़कर और कुछ मेरे अनुभव<sup>५</sup> में नहीं आया है। इस हालत का रस<sup>६</sup> जिसने चखा है वह गवाही दे सकेगा। आज तो इस प्रयोग<sup>७</sup> की सफलता<sup>८</sup> साबित हो चुकी है, ऐसा कह सकते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को मित्र समझ कर उसके साथ निर्मल संबंध रखे। दुनिया की तमाम औरतें बहनें हैं, माताएँ हैं, बेटियाँ हैं, यह खयाल ही आदमी को एकदम ऊँचा ले जानेवाला है, बन्धन<sup>९</sup> से मुक्ति<sup>१०</sup> देनेवाला हो जाता है। इसमें पति-पत्नी<sup>११</sup> कुछ भी खोते नहीं हैं, बल्कि अपनी पूँजी को बढ़ाते हैं, कुटुम्ब को बढ़ाते हैं और विकार-रूपी मैल को निकाल डालने से प्रेम को भी बढ़ाते हैं। विकार के न रहने से एक-दूसरे की सेवा बेहतर हो सकती है, आपस के झगड़े के मौक़े कम होते हैं। जहाँ स्वार्थी<sup>१२</sup>, एकांगी<sup>१३</sup> प्रेम होता है, वहाँ झगड़े के लिए ज़्यादा स्थान रहता है।

ऊपर की प्रधान<sup>१४</sup> बात सोच लेने के बाद और उसके दिल में जम जाने के बाद ब्रह्मचर्य से होनेवाले शरीर के लाभ, वीर्य<sup>१५</sup>-लाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। इरादतन् भोग-विलास के लिए वीर्य को गँवाना और शरीर को निचोना यह कितनी बेवकूफी है? वीर्य का उपयोग<sup>१६</sup> दोनों की शरीर और मन की शक्ति को बढ़ाने के लिए है।



विषय-भोग<sup>१७</sup> में उसका उपयोग करना उसका बहुत बड़ा दुरुपयोग<sup>१८</sup> है, और इसीलिए वह बहुत सी बीमारियों का मूल हो जाता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य मन, वचन और तन से बरतने का होता है। तमाम व्रतों को ऐसा ही समझना चाहिए। जो शरीर को काबू में रखता है, लेकिन मन से विकार को पोसता रहता है, वह मूढ़<sup>१९</sup> और मिथ्याचारी<sup>२०</sup> है, ऐसा गीता में हमने पढ़ा है; सभी ने इसका अनुभव किया है। मन को विकारवाला रहने देना और शरीर को दबाने की कोशिश करना इसमें नुकसान ही है। जहाँ मन है वहाँ शरीर आखिर घसीटे बिना रहेगा ही नहीं। यहाँ एक भेद<sup>२१</sup> समझ लेना ज़रूरी है। मन को विकारवश होने देना एक बात है; मन अपने-आप, बगैर इच्छा के, जबरन विकारवाला हो जाए या हुआ करे यह दूसरी बात है। उस विकार में हम मददगार न हों, तो आखिर हमारी जीत है ही। यह हम क्षण-क्षण अनुभव करते हैं कि शरीर काबू में रहता है, लेकिन मन नहीं रहता। इसीलिए शरीर को तुरन्त बस में करके हम मन को बस में करने की हमेशा कोशिश करते रहें, तो हम (अपना) फ़र्ज़ अदा कर चुके। मन के बस में हम हुए कि शरीर और मन का झगड़ा शुरू हुआ, मिथ्याचार का आरंभ हुआ। जब तक मन के विकार को हम दबाते रहेंगे, तब तक दोनों साथ साथ जाएँगे ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत मुश्किल, लगभग नामुमकिन माना गया है। उसके कारण ढूँढ़ने पर पता चलता है कि ब्रह्मचर्य का तंग, संकुचित अर्थ किया गया है। जनन-इन्द्रिय (लिंग, योनि) के विकारों पर काबू पाना ही ब्रह्मचर्य का पालन है ऐसा माना गया है। मुझे लगता है कि यह अधूरी और ग़लत व्याख्या<sup>२२</sup> है। तमाम विषयों<sup>२३</sup> पर रोक, काबू ही ब्रह्मचर्य है। जो दूसरी इन्द्रियों को – हवासों को – जहाँ तहाँ भटकने देता है और एक ही इन्द्रिय को रोकने की कोशिश करता है, वह निकम्मी कोशिश करता है, इसमें क्या शक है? कानों से विकार की बातें सुने, आँखों से विकार पैदा करनेवाली चीज़ें देखे, जीभ से विकारों को तेज़ करनेवाली चीज़ें स्वाद<sup>२४</sup> से खाये, हाथ से विकारों को तेज़ करनेवाली वस्तुओं को छुए और फिर भी जनन-इन्द्रिय को रोकने का इरादा कोई रखे, तो यह आग में हाथ डाल कर न जलने की कोशिश करने जैसा होगा। इसीलिए जो जनन-इन्द्रिय को रोकने की ठान ले, उसको तमाम इन्द्रियों को विकारों से रोकने की ठान लेनी ही चाहिए। ब्रह्मचर्य की तंग व्याख्या से नुकसान हुआ है, ऐसा मुझे हमेशा लगा है। मेरी तो पक्की राय है और मेरा तजुर्बा भी है कि अगर हम सब इन्द्रियों को एक साथ बस में लाने की आदत डालें, तो जनन-इन्द्रिय को बस में लाने की कोशिश तुरन्त सफल<sup>२५</sup> होगी। इसमें मुख्य चीज़ स्वाद<sup>२६</sup> की इन्द्रिय है, और इसीलिए उसके संयम को हमने अलग स्थान दिया है। उसके बारे में हम इसके बाद सोचेंगे।

ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ सब याद करें। ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्म की – सत्य की – खोज में चर्या यानी उसके मुताल्लिक आचार-बरताव। इस मूल अर्थ में से सब इन्द्रियों का संयम<sup>२७</sup> यह विशेष<sup>२८</sup> अर्थ निकलता है। सिर्फ़ जनन-इन्द्रिय का संयम ऐसा अधूरा अर्थ तो हम भूल ही जाएँ।

१. बेवफ़ा, २. बरतने को, ३. शौहर, ४. बीबी, ५. तजुर्बा, ६. मज़ा, ७. आजमाइश, ८. कामयाबी, ९. क़ैद, १०. आज़ादी, ११. शौहर-बीबी, १२. मतलबी, १३. इकतरफ़ा, १४. अक्वल, १५. धातु, १६. इस्तेमाल, १७. एश व इशरत में, १८. बुरा इस्तेमाल, १९. मूरख, २०. ढोंगी, २१. फ़र्क़, २२. तशरीह, २३. जज़्बात, २४. चाव से, २५. कारगर, २६. लज़्ज़त, जायक़ा, २७. काबू, २८. खास



## अस्वाद

ता. १२-८-१९३०

मंगल-प्रभात

ब्रह्मचर्य के साथ बहुत नज़दीक का संबंध रखनेवाला यह व्रत है | मेरा अनुभव है कि अगर मनुष्य इस व्रत में पार उतर सके, तो ब्रह्मचर्य यानी जनन-इन्द्रिय का संयम बिलकुल सहल हो जाए | लेकिन साधारण तौर पर इसे व्रतों में अलग स्थान नहीं दिया जाता | स्वाद को बड़े बड़े मुनिवर भी जीत नहीं सके, इसीलिए इस व्रत को अलग स्थान नहीं मिला | यह तो सिर्फ़ मेरा अनुमान है | ऐसा हो या न हो, हमने इस व्रत को अलग स्थान दिया है, इसीलिए इसका विचार अलग से कर लेना ठीक होगा |

अस्वाद यानी स्वाद न लेना | स्वाद यानी रस-मज़ा | जैसे दवा खाते वक़्त वह ज़ायक़ेदार है या नहीं इसका खयाल न करते हुए शरीर को उसकी ज़रूरत है ऐसा समझकर उसकी मात्रा में ही हम खाते हैं, उसी तरह अन्न को समझना चाहिए | अन्न यानी खाने लायक़ तमाम चीज़ें | इसीलिए दूध और फल भी इसमें आ जाते हैं | जैसे दवा कम मात्रा में ली जाए तो असर नहीं करती या कम असर करती है और ज़्यादा मात्रा में ली जाए तो नुक़सान करती है, उसी तरह अन्न का भी है | इसीलिए कोई भी चीज़ सिर्फ़ स्वाद के लिए खाना व्रत का भंग है | ज़ायक़ेदार लगनेवाली चीज़ ज़्यादा खाना यह तो आसानी से व्रत को तोड़ना हुआ | इस पर से हम समझ सकते हैं कि किसी चीज़ का स्वाद बढ़ाने या बदलने के लिए या अस्वाद मिटाने के लिए उसमें नमक मिलाना भी व्रत-भंग है | लेकिन खुराक में अमुक प्रमाण में नमक की ज़रूरत है ऐसा हम जानते हैं और इसीलिए उसमें नमक डालें तो ऐसा करने में व्रत का भंग नहीं है | शरीर के पोषण के लिए ज़रूरत न हो, फिर भी मन को ठगने के लिए 'ज़रूरत है', ऐसा कहकर कोई चीज़ और जोड़ना यह तो मिथ्याचार – झूठा बरताव हुआ |

इस तरह सोचने पर हम देखेंगे कि जो अनेक चीज़ें हम खाते हैं, वे शरीर की परवरिश के लिए ज़रूरी न होने के कारण छोड़ने लायक़ होती हैं | और यों अनगिनत वस्तुओं का त्याग जिसके लिए कुदरती हो जाए, उसके तमाम विकार शांत हो जाते हैं | 'एक हंडिया तेरह चीज़ें माँगती है' (एक तोलडी तेर वानां मागे छे), 'पेट बेगार करवाता है' (पेट करावे वेठ), 'पेट नाच नचाता है' (पेट वाजां वगडावे) – इन वचनों में बहुत सार है | इस बारे में इतना कम खयाल किया गया है कि अस्वाद-व्रत की निगाह से खुराक की पसंदगी लगभग नामुमकिन हो गई है | और, बचपन से ही माँ-बाप ग़लत दुलार करके अनेक तरह के स्वाद बच्चों को कराते हैं और उनके शरीर को बिगाड़ डालते हैं और जीभ को कुतिया बना डालते हैं, जिससे बड़े होने पर लोग शरीर से रोगी और स्वाद की दृष्टि से बड़े विकारी देखने में आते हैं | इसके कड़वे नतीजे हम पग-पग पर महसूस करते हैं | हम बहुत खर्च में पड़ जाते हैं, बैद्य-डाक्टरों के दरवाज़े पर जाते रहते हैं और शरीर तथा इन्द्रियों को बस में रखने के बजाय उनके गुलाम बनकर पंगु – अपाहिज जैसे हो जाते हैं | एक तज़ुर्बेकार बैद्य का वचन है कि जगत में उसने एक भी निरोगी-तंदुरुस्त आदमी नहीं देखा | जरा भी स्वाद किया कि शरीर भ्रष्ट हुआ, बिगड़ा और तुरन्त उस शरीर के लिए उपवास की ज़रूरत पैदा हुई |



इस विचारधारा से किसी को घबराने की ज़रूरत नहीं है | अस्वाद-व्रत से डरकर उसे छोड़ने की भी ज़रूरत नहीं है | जब हम कोई व्रत लेते हैं तो उसका मतलब यह नहीं कि तभी से हम उसे पूरा-पूरा निभाने लग गए | व्रत लेना यानी उसको पूरा-पूरा निभाने की ईमानदारी से मन, वचन और कर्म से मरने तक पक्की कोशिश करना | कोई व्रत मुश्किल है इसीलिए उसकी व्याख्या<sup>१</sup> को ढीला करके हम मन को धोखा न दें | अपने सुभीते के लिए आदर्श<sup>२</sup> को नीचे लाने में असत्य – झूठ (भरा) है, हमारी गिरावट है | मक़सद को स्वतंत्र रूप से<sup>३</sup> समझकर, वह कितना ही मुश्किल क्यों न हो, वहाँ तक पहुँचने की जी-जान से कोशिश करना परम अर्थ है – पुरुषार्थ<sup>४</sup> है | [पुरुष शब्द का अर्थ सिर्फ़ नर न करके मूल अर्थ करना चाहिए | पुर में यानी शरीर में जो रहता है वह पुरुष | ऐसा अर्थ करने से पुरुषार्थ शब्द का उपयोग नर-नारी दोनों के लिए हो सकता है ] महाव्रतों का तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में पूरा-पूरा पालन करने के लिए जो समर्थ<sup>५</sup> है, उसे जगत में कुछ भी करने को बाक़ी नहीं रहता; वह भगवान है, वह मुक्त है – आज़ाद है | हम तो अल्प<sup>६</sup>, मुक्ति की इच्छा रखनेवाले (मुमुक्षु), जानने की इच्छा रखनेवाले (जिज्ञासु), सत्य का आग्रह रखनेवाले – सच्चाई पर जोर देनेवाले – और उसकी खोज करनेवाले जीव हैं | इसीलिए गीता की भाषा में हम धीर-धीरे लेकिन अतन्द्रित<sup>७</sup> रह कर कोशिश करते रहें | ऐसा करेंगे तो किसी दिन प्रभु की कृपा, उसके प्रसाद के लायक़ हो जाएँगे और तब हमारे तमाम रस, भोग की लालसाएँ जल जाएँगी |

अस्वाद-व्रत की अहमियत अगर हम समझे हों, तो उसके पालन के लिए हम नई कोशिश करें | उसके लिए चौबीसों घंटे खाने के ही विचार करते रहने की ज़रूरत नहीं है | सिर्फ़ खबरदारी, जागृति की बहुत ज़रूरत रहती है | ऐसा करने से थोड़े ही समय में यह मालूम हो जाएगा कि हम कहाँ स्वाद करते हैं और कहाँ शरीर की परवरिश के लिए खाते हैं | यह जब मालूम हो जाए तब दृढ़ता से, मज़बूती से हम स्वाद को कम करते ही जाएँ | इस नज़र से सोचने पर आश्रम में सबके लिए बनी हुई रसोई, जो अस्वाद की भावना से बनी हुई होती है, बहुत मददगार होती है | वहाँ क्या खाएँगे या क्या पकाएँगे, इसका हमें विचार नहीं करना पड़ता; लेकिन जो खाना पका हुआ हो और हमारे लिए तजने लायक़ न हो, उसे ईश्वर की कृपा समझकर, मन में भी उसकी टीका-टिप्पणी<sup>८</sup>, न करते हुए, संतोष के साथ शरीर के लिए जितना ज़रूरी हो उतना खाकर हम उठ जाएँ | ऐसा करनेवाला मनुष्य आसानी से अस्वाद-व्रत का पालन करता है | सबकी रसोई बनानेवाले हमारा बोझ हलका करते हैं | वे हमारे व्रत के रखवाले बनते हैं | वे स्वाद कराने की दृष्टि से कुछ भी नहीं बनाएँगे | सिर्फ़ समाज के शरीर के पोषण के लिए ही खाना पकाएँगे | सचमुच तो आदर्श दशा में आग की ज़रूरत कम से कम या बिलकुल ही नहीं है | सूरज के रूप में महाअग्नि जो चीज़ें पकाती है, उन्हीं में से अपने खाने लायक़ चीज़ें हमें खोज निकालनी चाहिए | और इस तरह सोचने पर मनुष्य-प्राणी<sup>९</sup> सिर्फ़ फल खानेवाला है ऐसा साबित होता है | लेकिन यहाँ इतनी गहराई में जाने की ज़रूरत नहीं है | यहाँ तो हमें अस्वाद-व्रत क्या है, उसमें कौन कौनसी मुसीबतें हैं और नहीं हैं और उसका ब्रह्मचर्य के पालन से कितना नज़दीक का संबंध है यही सोचना था |

इतना जंच जाने के बाद सब लोग अपनी शक्ति के मुताबिक व्रत में पार उतरने की शुभ कोशिश करें |

१. मिक़दार में, २. खुराक, ३. बेलज्जती, ४. मिक़दार, ५. परवरिश, ६. फ़ाक्रा, ७. तशरीह, ८. मक़सद, ९. अलग से, १०. मर्दानी कोशिश, ११. ताक़तवर, १२. नाचीज़, १३. नागाफ़िल, १४. नुक्ताचीनी, १५. इन्सान

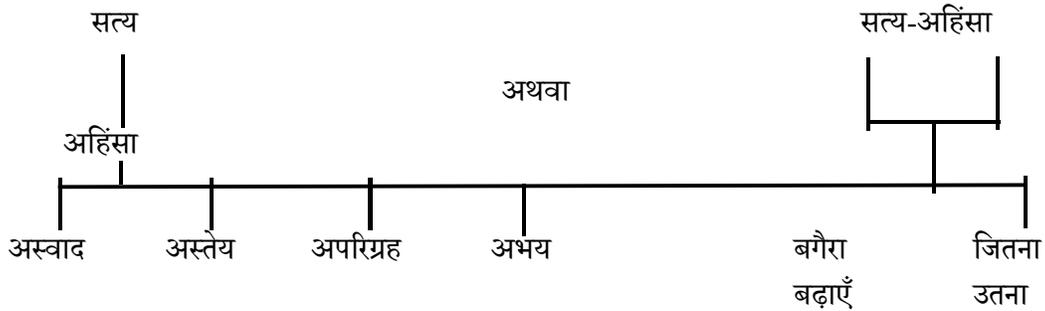


## अस्तेय (चोरी न करना)

ता. १९-८-१९३०, य. मं.

मंगल-प्रभात

अब हम अस्तेय-व्रत पर आते हैं | गहराई में जाने से हम देखेंगे कि सब व्रत सत्य और अहिंसा के या सत्य के पेट में समाए हुए हैं | वे इस तरह दिखाए जा सकते हैं :



या तो सत्य में से अहिंसा निकलती है ऐसा मानें या सत्य-अहिंसा की जोड़ी मानें | दोनों एक ही चीज़ हैं; फिर भी मेरा मन पहले की ओर झुकता है | और आखिरी हालत तो जोड़ी से –द्वन्द्व से – परे है | परम सत्य अकेला टिकता है | सत्य साध्य<sup>१</sup> है, अहिंसा साधन<sup>२</sup> है | अहिंसा क्या है यह हम जानते हैं; उसका पालन मुश्किल है | सत्य का तो हम सिर्फ़ कुछ अंश<sup>३</sup> ही जानते हैं; उसे पूरी तरह जानना देहधारी के लिए कठिन है, जैसे कि अहिंसा का पूरा-पूरा पालन देहधारी के लिए कठिन है |

अस्तेय के मानी हैं चोरी न करना | कोई मनुष्य ऐसा नहीं कहेगा कि जो चोरी करता है, वह सत्य को जानता है या प्रेमधर्म का पालन करता है | फिर भी चोरी का थोड़ा-बहुत कसूर तो हम सब जाने-अनजाने करते ही हैं | बगैर इजाज़त के किसी का कुछ लेना यह तो चोरी है ही | लेकिन जिसे अपना माना है उसकी भी चोरी इन्सान करता है – जैसे कोई बाप, अपने बच्चों के न जानते हुए, उनको न जताने के इरादे से, चोरी-छुपे कोई चीज़ खा लेता है | आश्रम का भंडार<sup>४</sup> हम सबका है ऐसा कह सकते हैं, परन्तु उसमें से चोरी-छुपे कोई गुड़ की डली भी ले ले तो वह चोर हैं | एक बालक दूसरे की कलम लेता है तो वह चोरी करता है | चाहे दूसरा आदमी जानता भी हो, लेकिन उसकी इजाज़त के बगैर उसकी कोई चीज़ लेना यह भी चोरी है | फलां चीज़ किसी की भी नहीं है, ऐसा मानकर उसे लेना भी चोरी है; यानी रास्ते में पड़ी मिली वस्तु के हम मालिक नहीं हैं, उस प्रदेश<sup>५</sup> का राजा या तंत्र<sup>६</sup> उसका मालिक है | आश्रम के नज़दीक मिली हुई कोई भी चीज़ आश्रम के मंत्री को सुपूर्द करनी चाहिए | अगर वह चीज़ आश्रम की न हो, तो मंत्री उसे पुलिस के हवाले कर दे |

यहाँ तक तो समझना प्रमाण<sup>७</sup> में सहल ही है | लेकिन अस्तेय इससे बहुत आगे जाता है | किसी एक चीज़ की हमें ज़रूरत नहीं है, फिर भी वह जिसके कब्जे में हो उससे, चाहे उसकी इजाज़त लेकर ही, लेना चोरी है | जिसकी ज़रूरत न हो ऐसी एक भी चीज़ हमें नहीं लेनी चाहिए | ऐसी चोरी जगत में ज्यादातर खाने की चीज़ों के बारे में होती



है। मुझे अमुक फल की हाजत नहीं है, फिर भी मैं उसे खाता हूँ, या चाहिए उससे ज़्यादा खाता हूँ, तो वह चोरी है। सचमुच अपनी हाजत कितनी है यह मनुष्य हमेशा जानता नहीं है, और लगभग हम सब होनी चाहिए उससे ज़्यादा अपनी हाजतें बनाए रखते हैं। इससे हम अनजाने चोर बन जाते हैं। विचार करने से हम देखेंगे कि अपनी बहुत सी हाजतें हम कम कर सकते हैं। अस्तेय का व्रत पालनेवाला एक के बाद एक अपनी हाजतें कम करता जाएगा। इस जगत में बहुत सी कंगाली अस्तेय के भंग से पैदा हुई है।

ऊपर जो चोरियाँ बताई गई वे सब बाहरी या शरीर की चोरियाँ हुईं। इससे भी बारीक-सूक्ष्म और आत्मा को नीचे गिरानेवाली या रखनेवाली चोरी मानसिक, मन से की जानेवाली है। मन से हम किसी की चीज़ पाने की इच्छा करें या उस पर बुरी नज़र डालें यह चोरी है। बड़े हों या बच्चे हों, अच्छी चीज़ देखकर अगर ललचाएँ तो वह मन की चोरी है। उपवास<sup>१</sup> करनेवाला शरीर से तो नहीं खाये, लेकिन दूसरे को खाते देखकर मन से स्वाद का मज़ा ले, तो वह चोरी करता है और अपने उपवास का भंग करता है। उपवास रखनेवाला आदमी उपवास छोड़ते समय खाने के विचार किया करता है, वह अस्तेय और उपवास का भंग करता है ऐसा कहा जा सकता है। अस्तेय-व्रत पालनेवाले को भविष्य में पाने की चीज़ के विचारों के भँवर में नहीं पड़ना चाहिए। बहुत सी चोरियों के मूल में ऐसी बददियानत पाई जाएगी। आज जो चीज़ सिर्फ़ खयाल में ही है, उसे पाने के लिए कल हम भले-बुरे उपाय<sup>१०</sup> काम में लाना शुरू कर देंगे।

और जैसे वस्तु की चोरी होती है, वैसे ही विचार की चोरी भी होती है। अमुक अच्छा विचार अपने मन में न उठा हो, फिर भी खुद ने ही सबसे पहले वह विचार किया ऐसा जो आदमी अहंकार<sup>११</sup> से कहता है, वह विचार की चोरी करता है। ऐसी चोरी बहुत से विद्वानों ने<sup>१२</sup> भी दुनिया की तवारीख़ में की है और आज भी चल रही है। खयाल कीजिए कि मैंने आंध्र में एक नई किस्म का चरखा देखा। वैसा चरखा मैं आश्रम में बनाऊँ और फिर कहूँ कि यह मेरी खोज है, तो इसमें मैं साफ़ तौर पर दूसरे की खोज की चोरी करता हूँ। झूठ तो बोलता ही हूँ।

इसीलिए अस्तेय-व्रत का पालन करनेवाले को बहुत नम्र, बहुत विचारशील<sup>१३</sup>, बहुत खबरदार और बहुत सादा रहना पड़ता है।

१. मक़सद, २. ज़रिया, ३. हिस्सा, ४. रसदख़ाना, ५. इलाक़ा, ६. हुकूमत, ७. मुक़ाबले में, ८. फलां, ९. रोज़ा, १०. तरीक़े, ११. खुदी, १२. आलिमों ने, १३. सोच-विचार करनेवाला



## अपरिग्रह (जमा न रखना)

ता. २६-८-१९३०, य. मं.

मंगल-प्रभात

अपरिग्रह का संबंध अस्तेय से है | जो माल असल में चुराया नहीं है उसे ज़रूरत न होने पर भी जमा करने से वह चोरी का माल-सा बन जाता है | परिग्रह के मानी हैं संचय यानी इकट्ठा करना | सत्य की खोज करनेवाला, अहिंसा बरतनेवाला परिग्रह नहीं कर सकता | परमात्मा परिग्रह नहीं करता | अपने लिए ज़रूरी चीज़ वह रोज़ की रोज़ पैदा करता है | इसीलिए अगर हम उस पर भरोसा रखते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हमारी ज़रूरत की चीज़ें वह रोज़ाना देता है, देगा | औलियाओं का, भक्तों का यही अनुभव है | रोज़ की ज़रूरत जितना ही रोज़ पैदा करने का ईश्वर का नियम हम नहीं जानते, या जानते हुए भी पालते नहीं | इसीलिए जगत में असमानता और उसमें से पैदा होनेवाले दुःख हम भुगतते हैं | अमीर के यहाँ उसको न चाहिए वैसी चीज़ें भरी पड़ी होती हैं, लापरवाही से खो जाती हैं, बिगड़ जाती हैं; जब कि इन्हीं चीज़ों की कमी के कारण करोड़ों लोग भटकते हैं, भूखों मरते हैं, ठंड से ठिठुर जाते हैं | सब लोग अगर अपनी ज़रूरत की चीज़ों का ही संग्रह करें, तो किसी को तंगी महसूस न हो और सबको संतोष हो | आज तो दोनों तंगी महसूस करते हैं | करोड़पति भी अरबपति होना चाहता है, फिर भी उसको संतोष नहीं होता | कंगाल करोड़पति होना चाहता है; कंगाल को भरपेट ही मिलने से संतोष होता हो ऐसा नहीं देखा

जाता | फिर भी उसे भरपेट पाने का हक है और उतना पानेवाला उसे बनाना समाज का फ़र्ज है | इसीलिए उस (ग़रीब) के और अपने संतोष के खातिर अमीर को पहल करनी चाहिए | अगर वह अपना बहुत ज़्यादा परिग्रह छोड़े, तो कंगाल को अपनी ज़रूरत जितना आसानी से मिल जाए और दोनों पक्ष संतोष का सबक सीखें | आत्यंतिक<sup>१</sup> आदर्श अपरिग्रह तो जो मनुष्य मन और कर्म से दिगम्बर है उसी का हो सकता है | मतलब यह कि वह पंछी की तरह बग़ैर घर के, बग़ैर कपड़े के और बग़ैर अन्न के चलता फिरता रहेगा | अन्न तो जो उसे रोज़ लगेगा वह भगवान देता रहेगा | इस अवधूत<sup>२</sup> दशा को विरला ही आदमी पहुँच सकेगा | हम मामूली दरजे के सत्याग्रही, जिज्ञासु (जानने की इच्छा रखनेवाले) लोग आदर्श<sup>३</sup> को ख्याल में रखकर जैसा बन पड़े, हमेशा अपने परिग्रह की जाँच करते रहे और उसे कम करते जाएँ | सही सुधार, सच्ची सभ्यता<sup>४</sup> का लक्षण<sup>५</sup> परिग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि सोच-समझ कर और अपनी इच्छा से उसे कम करना है | ज्यों ज्यों हम परिग्रह घटाते जाते हैं, त्यों त्यों सच्चा सुख और सच्चा संतोष बढ़ता जाता है, सेवा की शक्ति बढ़ती जाती है | इस तरह सोचने पर और बरतने पर हम देखेंगे कि आश्रम में हम बहुतसा संग्रह ऐसा करते हैं, जिसकी ज़रूरत हम साबित नहीं कर सकेंगे; और ऐसे बिन-ज़रूरी परिग्रह से पड़ोसी को चोरी करने के लालच में फँसाते हैं | अभ्यास से, आदत डालने से आदमी अपनी हाजतें घटा सकता है; और ज्यों ज्यों उन्हें घटाता जाता है त्यों त्यों वह सुखी, शांत और सब तरह से तंदुरुस्त होता जाता है | महज सत्य की यानी आत्मा की नज़र से सोचने पर शरीर भी परिग्रह है | भोग की इच्छा से हमने शरीर का आवरण<sup>६</sup> पैदा किया है और उसे हम टिकाए रखते हैं | अगर भोग की इच्छा बिलकुल कम हो जाए, तो शरीर की हाजत मिट जाए; यानी मनुष्य को नया शरीर लेने की ज़रूरत न रहे | आत्मा सब जगह फैलनेवाली, सर्वव्यापी होने से शरीर-रूपी पिंजरे में क्योकर कैद होगी



? उस पिंजरे को बनाए रखने के लिए हम बुरा काम क्यों करें ? औरों को क्यों मारें ? इस तरह विचार करते हुए हम आखिरी त्याग तक पहुँच जाते हैं और जब तक शरीर है तब तक उसका उपयोग सिर्फ़ सेवा के लिए करना सीखते हैं; यहाँ तक कि सेवा ही उसकी असली खुराक हो जाती है | वह खाता है, पीता है, लेटता है, बैठता है, जागता है, सोता है; यह सब सेवा के लिए ही होता है | इसमें से पैदा होनेवाला सुख सच्चा सुख है, और ऐसा करते हुए मनुष्य अंत में सत्य की झाँकी करता है | हम सब अपने अपने परिग्रह के बारे में इसी निगाह से सोचें |

इतना याद रखने लायक है कि जैसे चीज़ों का अपरिग्रह होना चाहिए वैसे ही विचारों का भी अपरिग्रह होना चाहिए | जो आदमी अपने दिमाग में बेकार का ज्ञान भर रखता है वह परिग्रही है | जो विचार हमें ईश्वर से विमुख करते हैं, फेर लेते हैं या ईश्वर की ओर नहीं ले जाते, वे सब परिग्रह में गिने जाएँगे और इसीलिए छोड़ने लायक हूँ | ज्ञान की ऐसी व्याख्या भगवान ने गीता के तेरहवें अध्याय में दी है | वह इस मौक़े पर सोचने लायक है | अमानित्व<sup>१</sup> वग़ैरह को गिना कर भगवान ने कह दिया है कि उसके अलावा जो कुछ है वह सब अज्ञान है | अगर यह सच्चा वचन है – और सच्चा तो है ही – तो आज हम बहुत कुछ जो ज्ञान के नाम से जमा करते हैं वह अज्ञान ही है और उससे लाभ के बजाय नुक़सान होता है; उससे सिर घूमता है और आखिर वह ख़ाली हो जाता है; उससे असंतोष फैलता है और बुराइयाँ बढ़ती हैं |

इसमें से कोई जड़ता का अर्थ कभी न निकाले | हमारा हरएक पल और क्षण प्रवृत्तिवाला<sup>२</sup> होना चाहिए | लेकिन वह प्रवृत्ति सात्त्विक हो, सत्य की ओर ले जानेवाली हो | जिसने सेवाद्वय को अपनाया है, वह एक पल के लिए भी जड़ दशा में नहीं रह सकता | यहाँ तो सार-असार<sup>३</sup> का विवेक<sup>४</sup> सीखने की बात है | सेवा-परायण<sup>५</sup> मनुष्य को यह विवेक आसानी से हासिल होता है |

१. गिरोह, २. हद दरजे का, ३. मस्ताना, फ़क़ीराना, ४. मक़सद, ५. तहजीब, ६. सिफ़्त, ७. ढक्कन, ८. घमंड न होना, ९. कामवाला, १०. दम-बेदम, ११. परख, १२. सेवा में लगा रहनेवाला



## अभय

ता. २-९-१९३०

मंगल-प्रभात

**इसकी** गिनती गीताजी के सोलहवें अध्याय में दैवी संपत् का जिक्र करते हुए भगवान ने प्रथम की है। यह श्लोक की रचना की सुविधा के लिए है या अभय का पहला स्थान होना चाहिए इसीलिए है, इस बहस में मैं यहाँ नहीं उतरूँगा; ऐसा निर्णय<sup>१</sup> करने की मुझ में लियाक़त भी नहीं है। मेरी राय में अभय को सहज ही पहला स्थान मिला हो, तो भी वह उसके लायक ही है। बिना अभय के दूसरी संपत्तें नहीं मिलेंगी। बिना अभय के सत्य की खोज कैसे हो? बिना अभय के अहिंसा का पालन कैसे हो? 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जोने' (हरि का मार्ग शूर का मार्ग है, उसमें कायर का काम नहीं)। सत्य ही हरि, वही राम, वही नारायण, वही वासुदेव है। कायर यानी डरा हुआ, बुजदिल; शूर यानी भय से मुक्त, तलवार वगैरह से लैस नहीं। तलवार बहादुर की निशानी नहीं है, वह डरपोक की निशानी है।

अभय का मतलब है तमाम बाहरी भयों से मुक्ति<sup>२</sup>। मौत का डर, धन-दौलत लुट जाने का डर, कुटुम्ब-कबीले के बारे में डर, रोग का डर, हथियार चलने का डर, आबरू का डर, किसी को बुरा लगने का – चोट पहुँचाने का डर, इस तरह डर की फेहरिस्त जितनी बढ़ाना चाहें हम बढ़ा सकते हैं। एक मौत का भय जीता कि सब भयों को जीत लिया, ऐसा आम तौर पर कहा जाता है। लेकिन यह ठीक नहीं लगता। बहुत से लोग मौत का डर छोड़ देते हैं, फिर भी वे तरह तरह के दुःखों से भागते हैं। कुछ लोग खुद मरने को तैयार होते हैं, लेकिन सगे-संबंधियों का बिछोह बरदाश्त नहीं कर सकते। कोई कंजूस यह सब छोड़ देगा, देह भी छोड़ देगा, लेकिन जमा किया हुआ धन छोड़ते झिझकेगा। कोई आदमी अपनी मानी हुई इज्जत-आबरू बनाए रखने के लिए बहुत कुछ स्याह-सफ़ेद<sup>३</sup> करने को तैयार हो जाएगा और करेगा। कोई जगत की निंदा<sup>४</sup> के भय से सीधी राह जानते हुए भी उसे पकड़ते हिचकिचायेगा। सत्य की खोज करनेवाले को इन सब भयों को छोड़े सिवा चारा नहीं। हरिश्चंद्र की तरह बरबाद होने की उसकी तैयारी होनी चाहिए। हरिश्चंद्र की कथा भले ही मनगढ़ंत हो, लेकिन उसमें सब आत्मार्थियों (आत्मा का कल्याण चाहनेवालों) का अनुभव भरा हुआ है; इसीलिए उस कथा की कीमत किसी तारीखी<sup>५</sup> कथा से अनंतगुनी<sup>६</sup> ज्यादा है और हम सबको उसे अपने पास रखना चाहिए और उस पर गौर करना चाहिए।

अभय-व्रत का पूरी तरह पालन करना लगभग नामुमकिन है। तमाम भयों से मुक्ति तो वही मनुष्य पा सकता है, जिसे आत्मा के दर्शन हुए हों। अभय अमूर्छ<sup>७</sup> दशा की आखिरी हद<sup>८</sup> है। निश्चय करने से<sup>९</sup>, लगातार कोशिश करने से और आत्मा में श्रद्धा बढ़ने से अभय की मात्रा बढ़ सकती है। मैंने शुरू में ही कहा है कि हमें बाहरी भयों से मुक्ति पानी है। अंदर जो दुश्मन हैं उनसे तो डरकर ही चलना है। काम, क्रोध वगैरह का भय सच्चा भय है। उसे जीत लें तो बाहरी भयों की परेशानी अपने-आप मिट जाएगी। तमाम भय देह को लेकर हैं। अगर देह की ममता छुटे, तो आसानी से अभय प्राप्त<sup>१०</sup> हो जाय। इस तरह सोचते हुए हम देखेंगे कि तमाम भय हमारी खयाली पैदावार हैं। पैसे में



से, कुटुम्ब में से, शरीर में से, 'मेरा' – पन हम निकाल दें, तो भय कहाँ रह जाता है ? 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (उसे तजकर भोगो) – यह रामबाण वचन है | कुटुम्ब, पैसा, देह

ज्यों के त्यों रहें | उनके बारे में हमें अपनी कल्पना<sup>१</sup> बदलनी होगी | वे 'हमारे' नहीं हैं, 'मेरे' नहीं हैं | वे ईश्वर के हैं; 'मैं' भी उसी का हूँ; इस जगत में 'मेरा' ऐसा कुछ है ही नहीं | फिर मुझे भय काहेका ? इसीलिए उपनिषद्कार ने कहा: 'उसे तजकर भोगो' | इसीलिए हम उसके रखवाले बनें; वह उसकी रखवाली के लिए ज़रूरी सामान और शक्ति हमें देगा | यों हम स्वामी<sup>२</sup> मिटकर सेवक बनें, शून्य जैसे (कुछ नहीं) होकर रहें, तो आसानी से तमाम भयों को जीत लेंगे, आसानी से शांति पायेंगे और सत्य-नारायण का दर्शन करेंगे |

१. फ़ैसला, २. छुटकारा, ३. भला-बुरा, ४. बदगोई, ५. ऐतिहासिक, ६. बेहद, ७. नागाफिल, ८. पराकाष्ठा, ९. ठान लेने से, १०. हासिल, ११. खयाल, १२. मालिक



## अस्पृश्यता-निवारण<sup>१</sup>

ता. ९-९-१९३०

मंगल-प्रभात

यह व्रत भी अस्वाद-व्रत की तरह नया है और कुछ विचित्र भी लगेगा | यह जितना विचित्र<sup>२</sup> है उससे कहीं ज्यादा जरूरी है | अस्पृश्यता यानी अछूतपन; और अखा भगत ने ठीक ही गाया है कि 'आभडछेट अदकेरुं अंग' (अछूतपन तो एक गैर-जरूरी अंग है, जो छठी ऊंगली के समान काम का नहीं है) | यह जहाँ तहाँ धर्म के नाम पर या धर्म के बहाने धर्म के काम में रुकावट डालता है और धर्म को बिगाड़ता है | अगर आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई नहीं | जैसे ढेढ़, भंगी अछूत माने जाते हैं, लेकिन अछूत नहीं हैं, वैसे मुरदा भी अछूत नहीं है, वह सम्मान और करुणा, इज्जत और रहम के लायक है | किसी मुरदे को छूकर या तेल लगाकर या हजामत कर-कराकर अगर लोग नहाते हैं, तो वह सिर्फ आरोग्य-तंदुरुस्ती के खयाल से ही | मुरदे को छूकर या तेल लगाकर अगर कोई नहाता नहीं है, तो वह गंदा भले ही कहा जाए, लेकिन पातकी नहीं है, पापी नहीं है | यों तो भले ही माता बच्चे का मैला उठाकर जब तक न नहाये या हाथ-पैर न धोये तब तक अछूत गिनी जाए; लेकिन अगर बच्चा लाड़ करता हुआ, खेलता हुआ उसे छू ले तो उसे (बच्चे को) छूत लगनेवाली नहीं है, न उसकी आत्मा मलिन<sup>३</sup> होगी | लेकिन जो नफरत के कारण भंगी, ढेढ़, चमार वगैरह नाम से पहचाना जाता है, वह तो जनम से अछूत माना जाता है | भले ही उसने सैंकड़ों साबुनों से बरसों तक शरीर को मला हो, भले ही वह वैष्णव की पोशाक पहनता हो, माला-कंठी धारण करता हो; भले ही वह रोज़ गीतापाठ करता हो और लेखक का धंधा करता हो, तो भी वह अछूत ही माना जाता है | इस प्रकार जो धर्म माना जाता है या बरता जाता है, वह धर्म नहीं है, अधर्म है और नाश होने लायक है | अस्पृश्यता-निवारण को व्रत की जगह देकर हम ज़ाहिर करते हैं कि अछूतपन हिन्दू धर्म का अंग नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि वह हिन्दू धर्म में पैठी हुई एक सड़न है, वहम है, पाप है; और उसे मिटाना हरएक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य<sup>४</sup> है | इसीलिए जो उसे पाप मानता है वह उसका प्रायश्चित्त<sup>५</sup> करे और कुछ नहीं तो प्रायश्चित्त के तौर पर ही समझदार हिन्दू अपना धर्म समझ कर हरएक अछूत माने जानेवाले भाई या बहन को अपनावे; प्रेम से और सेवाभाव से उसे छुए, छूकर अपने को पावन<sup>६</sup> हुआ माने, 'अछूतों' के दुःख दूर करे | वे बरसों से कुचले गए हैं, इसीलिए उनमें अज्ञान वगैरह जो दोष आ गए हैं उन्हें धीरज से दूर करने में उनकी मदद करे और ऐसा करने के लिए दूसरे हिन्दुओं को समझाए, प्रेरणा दे | इस निगाह से अछूतपन को देखने पर उसे दूर करने में जो दुनियावी या राजनीतिक<sup>७</sup> नतीजे समाए हुए हैं, उन्हें व्रतधारी<sup>८</sup> तुच्छ<sup>९</sup> समझेगा | यह या ऐसा नतीजा आए या न आए, फिर भी अछूतपन मिटाने के काम को जिसने अपना व्रत बना रखा है, वह धर्म समझकर अछूत माने जानेवाले लोगों को अपनाएगा | सत्य वगैरह का आचरण करते हुए हम दुनियावी नतीजों का विचार न करें | सत्य का आचरण उस व्रतधारी के लिए कोई तरकीब नहीं है, वह तो उसकी देह के साथ जुड़ी हुई चीज़ है, उसका स्वभाव है; उसी तरह अस्पृश्यता-निवारण भी उस व्रतधारी के लिए तरकीब नहीं है, लेकिन उसका स्वभाव है | इस व्रत का महत्त्व समझने के बाद हमें मालूम होगा कि यह अछूतपन की सड़न सिर्फ ढेढ़-भंगी माने जानेवालों के बारे में ही हिन्दू समाज में पैठ गई है ऐसा नहीं है | सड़न



का स्वभाव है कि वह पहले राई के दाने के बराबर दिखती है, बाद में पहाड़ का रूप ले लेती है और अंत में जिसमें दाखिल होती है उसका नाश कर देती है। अछूतपन का भी ऐसा ही है। यह छुआछूत दूसरे धर्मवालों के साथ बरती जाती है, दूसरे फिरकेवालों के साथ बरती जाती है, एक ही संप्रदाय<sup>१०</sup> के भीतर भी घुस गई है; यहाँ तक कि कुछ लोग तो छुआछूत को पालते पालते इस पृथ्वी पर भाररूप हो गए हैं। वे अपना ही संभालने, खुद को ही सहलाने (आँच न आने देने) या बचाते फिरने, नहाने-धोने, खाने-पीने से फुरसत नहीं पाते और ईश्वर को भूल कर ईश्वर के नाम से खुद को पूजने लग जाते हैं। इसीलिए अछूतपन को मिटानेवाला आदमी सिर्फ़ डेढ़-भंगी को अपनाकर संतोष नहीं मानेगा; जब तक वह तमाम जीवों को अपने में नहीं देखता और अपने को तमाम जीवों में नहीं होम देता, नहीं मिटा देता, तब तक वह शांत होगा ही नहीं। अछूतपन मिटाना यानी तमाम जगत के साथ दोस्ती रखना, उसका सेवक बनना। यों अस्पृश्यता-निवारण और अहिंसा की जोड़ी बन जाती है; और सचमुच है भी। अहिंसा का अर्थ है तमाम जीवों के लिए पूरा प्रेम। अछूतपन मिटाने का भी वही अर्थ है। तमाम जीवों के साथ का भेद मिटाना अछूतपन मिटाना है। इस तरह अछूतपन को देखने से मालूम होगा कि यह दोष<sup>११</sup> थोड़ा-बहुत सारे जगत में फैला हुआ है। यहाँ हमने उसका हिन्दू धर्म की सड़न के रूप में विचार किया है, क्योंकि उसने हिन्दू धर्म में धर्म का स्थान हथिया लिया है और धर्म के बहाने लाखों या करोड़ों लोगों की हालत गुलामों जैसी कर डाली है।

१. अछूतपन मिटाना, २. अजीब, ३. मैली, ४. फ़र्ज़, ५. कफ़़ारा, ६. पाक, ७. सिवासी, ८. व्रत पालनेवाला, ९. नाचीज़, १०. फिरका, ११. खराबी



## ज्ञात-मेहनत

ता. १६-९-१९३०

मंगल-प्रभात

ज्ञात-मेहनत तमाम मनुष्यों के लिए लाजिमी है, यह बात पहले-पहल टोलस्टॉय का एक निबंध पढ़कर मेरे मन में बैठ गई | यह बात इतनी साफ़ जानने के पहले भी इस पर अमल तो मैं रस्कन का 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) पढ़कर तुरंत करने लग गया था | ज्ञात-मेहनत अंग्रेजी शब्द 'ब्रेड लेबर' का अनुवाद है | 'ब्रेड लेबर' का शब्द के मुताबिक अनुवाद है रोटी (के लिए) मज़दूरी | रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मज़दूरी करनी चाहिए, शरीर को (कमर को) झुकाना चाहिए, यह ईश्वर का क़ानून है | यह मूल खोज टोलस्टॉय की नहीं है, लेकिन उनसे बहुत कम मशहूर रशियन लेखक बोन्दरेव्ह (T. M. Bondarev) की है! टोलस्टॉय ने उसे रोशन किया और अपनाया | इसकी झंकी मेरी आँखें भगवद्गीता के तीसरे अध्याय<sup>१</sup> में करती हैं | यज्ञ किए बिना जो खाता है वह चोरी का अन्न खाता है, ऐसा कठोर शाप<sup>२</sup> यज्ञ नहीं करनेवाले को दिया गया है | यहाँ यज्ञ का अर्थ ज्ञात-मेहनत या रोटी-मज़दूरी ही शोभता<sup>३</sup> है और मेरी राय में यही हो सकता है | जो भी हो, हमारे इस व्रत का जन्म इस तरह हुआ है | बुद्धि भी उस चीज़ की ओर हमें ले जाती है | जो मज़दूरी नहीं करता उसे खाने का क्या हक है ? बाइबल कहती है : "अपनी रोटी तू अपना पसीना बहाकर कमा और खा |" करोड़पति भी अगर अपने पलंग पर लेटता रहे और उसके मुँह में कोई खाना डाले तब खाये, तो वह ज़्यादा समय तक खा नहीं सकेगा; इसमें उसे मज़ा भी नहीं आएगा | इसीलिए वह कसरत वगैरह करके भूख पैदा करता है और खाता तो है अपने ही हाथ-मुँह हिलाकर | अगर यों किसी न किसी रूप में अंगों की कसरत राय-रंक सबको करनी ही पड़ती है, तो रोटी पैदा करने की कसरत ही सब क्यों न करें ? यह सवाल कुदरती तौर पर उठता है | किसान को हवाखोरी या कसरत करने के लिए कोई कहता नहीं है और दुनिया के ९० फ़ीसदी से भी ज़्यादा लोगों का गुजारा खेती पर होता है | बाक़ी के दस फ़ीसदी लोग अगर इनकी नक़ल करें, तो जगत में कितना सुख, कितनी शांति और कितनी तंदुरुस्ती फैल जाए ? और अगर खेती के साथ बुद्धि भी मिल जाए, तो खेती से संबंध रखनेवाली बहुतसी मुसीबतें आसानी से दूर हो जाएँगी | फिर, अगर इस ज्ञात-मेहनत के निरपवाद<sup>४</sup> क़ानून को सब लोग मानें, तो ऊँच-नीच का भेद मिट जाए | आज तो जहाँ ऊँच-नीच की गंध भी नहीं थी वहाँ यानी वर्ण-व्यवस्था में भी वह घुस गई है | मालिक-मज़दूर का भेद आम और कायम हो गया है और ग़रीब आदमी धनवान से जलता है | अगर सब लोग रोटी के लिए मज़दूरी करें, तो ऊँच-नीच का भेद न रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा तो वह खुद को मालिक नहीं बल्कि उस धन का रखवाला या ट्रस्टी मानेगा और उसका ज़्यादातर उपयोग सिर्फ़ लोगों की सेवा के लिए करेगा | जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की भक्ति करनी है, ब्रह्मचर्य को कुदरती बनाना है, उसके लिए तो ज्ञात-मेहनत रामबाण-सी हो जाती है | यह मेहनत सचमुच तो खेती में ही होती है | लेकिन सब लोग खेती नहीं कर सकते, ऐसी हालत आज तो है ही | इसीलिए खेती के आदर्श<sup>५</sup> को खयाल में रखकर खेती के बदले में आदमी भले दूसरी मज़दूरी करे – जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी वगैरह वगैरह |



सबको खुद का भंगी तो बन ही जाना चाहिए | जो खाता है वह टट्टी फिरेगा ही | जो आदमी टट्टी फिरता है वही अपनी टट्टी को ज़मीन में गाड़ दे, यह उत्तम रिवाज है | अगर यह नहीं ही हो सके, तो प्रत्येक कुटुम्ब अपना यह फ़र्ज अदा करे | जिस समाज में भंगी का अलग पेशा माना गया है, वहाँ कोई बड़ा दोष पैठ गया है, ऐसा मुझे तो बरसों से लगता रहा है | इस ज़रूरी और तंदुरुस्ती बढ़ानेवाले (आरोग्य-पोषक) काम को सबसे नीच काम पहले-पहल किसने माना, इसका इतिहास<sup>१</sup> हमारे पास नहीं है | जिसने माना उसने हम पर उपकार<sup>२</sup> तो नहीं ही किया | हम सब भंगी हैं, यह भावना<sup>३</sup> हमारे मन में बचपन से ही जम जानी चाहिए; और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो लोग समझ गए हैं, वे ज़ात-मेहनत का आरंभ पाखाना-सफ़ाई से करें | जो समझ-बूझकर, ज्ञानपूर्वक यह करेगा, वह उसी क्षण से धर्म को निराले ढंग से और सही तरीके से समझने लगेगा |

बालक, बूढ़े और बीमारी से अपंग<sup>४</sup> बने हुए लोग अगर मज़दूरी न करें, तो उसे कोई अपवाद न समझे | बालक अपनी माँ में समा जाता है | अगर कुदरत के क़ानून का भंग न किया जाए, तो बूढ़े अपंग नहीं बनेंगे; और उन्हें बीमारी तो होगी ही क्यों ?

१. बाब, २. सख्त बददुआ, ३. फबता, ४. ग़ैर-मुस्तसना, ५. मक्रसद, ६. तारीख, ७. एहसान, ८. खयाल, ९. अपाहिज



## सर्वधर्म-समभाव-१

ता. २३-९-१९३०

मंगल-प्रभात

हमारे व्रतों में जो व्रत सहिष्णुता यानी बरदाश्त के नाम से पहचाना जाता था, उसे यह नया नाम दिया गया है। सहिष्णुता शब्द अंग्रेजी शब्द 'टोलरेशन' का अनुवाद है। यह मुझे पसंद नहीं था, लेकिन दूसरा नाम सूझता नहीं था। काकासाहब को भी वह पसंद नहीं था। उन्होंने सर्वधर्म-समादर शब्द सुझाया। मुझे यह भी पसंद नहीं आया। दूसरे धर्मों को बरदाश्त करने में उनकी (धर्मों की) कमी मान ली जाती है। आदर में मेहरबानी का भाव आता है। अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के लिए समभाव, बराबरी का भाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसा की नज़र से काफ़ी नहीं हैं। दूसरे धर्मों के लिए समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता का स्वीकार आ ही जाता है। और सत्य की आराधना, अहिंसा की कसौटी यही सिखाती है। संपूर्ण सत्य को अगर हमने देखा होता, तो फिर सत्य का आग्रह किसलिए रहता? तब तो हम परमेश्वर हो जाते; क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है, ऐसी हमारी भावना है। हम पूरे सत्य को पहचानते नहीं हैं, इसीलिए उसका आग्रह रखते हैं, इसीलिए पुरुषार्थ के लिए जगह है। इसमें हमारी अपूर्णता का स्वीकार आ जाता है। अगर हम अपूर्ण हैं तो हमारी कल्पना का धर्म भी अपूर्ण है। स्वतंत्र धर्म संपूर्ण है। उसे हमने देखा नहीं है, जैसे ईश्वर को हमने देखा नहीं है। हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है और उसमें हमेशा हेरफेर हुआ करते हैं, होते रहेंगे। ऐसा हो तभी हम ऊपर और ज़्यादा ऊपर उठ सकते हैं; सत्य की ओर, ईश्वर की ओर रोज-रोज़ आगे बढ़ सकते हैं। और अगर आदमी के माने हुए सब धर्मों को हम अपूर्ण मानें, तो फिर किसी को ऊँचा या नीचा मानने की बात ही नहीं रहती। सब धर्म सच्चे हैं, लेकिन सब अपूर्ण हैं, इसीलिए उनमें दोष हो सकते हैं। समभाव होने पर भी हम उनमें (सब धर्मों में) दोष देख सकते हैं। अपने धर्म में भी हम दोष देखें। इन दोषों के कारण उसे (अपने धर्म को) हम छोड़ न दें, लेकिन उसके दोषों को मिटाएँ। अगर इस तरह हम समभाव रखें, तो दूसरे धर्मों में से जो कुछ लेने लायक हो उसे अपने धर्म में जगह देने में हमें हिचकिचाहट नहीं होगी; इतना ही नहीं बल्कि ऐसा करना हमारा फ़र्ज़ हो जाएगा।

सब धर्म ईश्वर के दिए हुए हैं, लेकिन वे मनुष्य की कल्पना के धर्म हैं। और मनुष्य उनका प्रचार करता है, इसीलिए वे अपूर्ण हैं। ईश्वर का दिया हुआ धर्म पहुँच के परे – अगम्य है। मनुष्य उसे (अपनी) भाषा में रखता है, उसका अर्थ भी मनुष्य करता है। किसका अर्थ सच्चा है? सब अपनी

अपनी दृष्टि से, जब तक उस दृष्टि के मुताबिक चलते हैं तब तक, सच्चे हैं। लेकिन सबका ग़लत होना भी नामुमकिन नहीं। इसीलिए हम सब धर्मों की ओर समभाव रखें। इससे अपने धर्म के लिए हम में उदासीनता नहीं आती, लेकिन अपने धर्म के लिए हमारा जो प्रेम है वह अंधा न होकर ज्ञानवाला (ज्ञानमय) बनता है और इसीलिए वह ज़्यादा सात्त्विक, ज़्यादा निर्मल बनता है। सब धर्मों की ओर समभाव हो तभी हमारे दिव्य चक्षुः खुलेंगे। धर्माधता में और दिव्य दर्शन में उत्तर-दक्षिण का अंतर है। धर्म का ज्ञान होने पर अड़चनें दूर होती हैं और समभाव पैदा होता है। यह समभाव मन में बढ़ाकर हम अपने धर्म को ज़्यादा पहचानेंगे।



यहाँ धर्म-अधर्म का भेद नहीं मिटता | यहाँ तो जिन धर्मों पर मुहर लगी हुई हम जानते हैं उनकी बात है | इन सब धर्मों में मूल सिद्धांत – बुनियादी उसूल – तो एक ही हैं | इन सब धर्मों में संत स्त्री-पुरुष हो गए हैं, आज भी मौजूद हैं | इसीलिए धर्मों के लिए समभाव में और धर्मियों – मनुष्यों – के लिए समभाव में कुछ फ़र्क है | सारे मनुष्यों के लिए – दुष्ट<sup>१</sup> और श्रेष्ठ<sup>२</sup> के लिए, धर्मी और अधर्मी के लिए समभाव की ज़रूरत है, लेकिन अधर्म के लिए कभी नहीं |

तब सवाल यह उठता है कि बहुत से धर्म किसलिए ? धर्म बहुत से है यह हम जानते हैं | आत्मा एक है, लेकिन मनुष्य-देह अनगिनत हैं | देहों का यह अनगिनतपन टाले नहीं टलता | फिर भी आत्मा की एकता को हम पहचान सकते हैं | धर्म का मूल एक है, जैसे पेड़ का एक है; लेकिन उसके पत्ते अनगिनत हैं |

१. तसलीम, क़बूल, २. पूरा-पूरा, ३. मेहनत, कोशिश, ४. नुक्स, ५. लापरवाही, ६. भीतर की आँखें, ७. मज़हबी तास्सुब, ८. बुरे से बुरा, ९. अच्छे से अच्छा



## सर्वधर्म-समभाव-२

ता. ३०-९-१९३०

मंगल-प्रभात

यह विषय<sup>१</sup> ऐसा अहम<sup>२</sup> है कि यहाँ मैं इसे ज़रा बढ़ाना चाहता हूँ। अपना कुछ तज़रबा मैं बताऊँ तो समभाव का अर्थ शायद ज़्यादा स्पष्ट होगा। जैसे यहाँ प्रार्थना रोज़ होती है वैसे ही फिनिक्स में भी रोज़ प्रार्थना हुआ करती थी। उसमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाई थे। मरहूम रुस्तमजी सेठ और उनके बच्चे अनेक बार उसमें शामिल होते थे। रुस्तमजी सेठ को 'मने वहालुं वहालुं दादा रामजीनुं नाम' भजन बहुत पसंद था। जहाँ तक मुझे याद है, एक बार मगनलाल (गांधी) या काशी (बहन) वह भजन हम सभी को गवा रही थी। रुस्तमजी सेठ हर्ष में बोल उठे : “दादा रामजी” के बदले ‘दादा होरमज़द’ गाओ न।” गवानेवालों ने और गानेवालों ने यह विचार बिलकुल सहज भाव से अपना लिया और तबसे जब रुस्तमजी सेठ हाज़िर हों तब अचूक रूप में और वे न हों तब कभी कभी हम वह भजन ‘दादा होरमज़द’ के नाम से गाते थे। मरहूम दाऊद सेठ का बेटा मरहूम हुसेन तो आश्रम में बहुत बार रहता था। वह प्रार्थना में उत्साह से शामिल होता था। वह खुद बहुत मीठे सूर में ‘ओर्गन’ के साथ ‘ये बहारे बाग़ दुनिया चंद रोज़’ गाता था। यह भजन हम सबको उसने सिखा दिया था तथा प्रार्थना में बहुत दफ़ा गाया जाता था। हमारे यहाँ की प्रार्थनामाला में उसे जो स्थान मिला है वह सत्यप्रिय हुसेन की यादगार में मिला है। उससे ज़्यादा चुस्ती से सत्य का पालन करनेवाले नौजवान मैंने देखे नहीं हैं। जोसेफ़ रॉयपेन आश्रम में अनेक बार आते-जाते थे। वे ईसाई थे। उन्हें ‘वैष्णव जन’ भजन बहुत पसंद था। वे संगीत बहुत अच्छा जानते थे। उन्होंने ‘वैष्णव जन’ की जगह एक दिन ‘क्रिश्चियन जन तो तेने कहिए’ अलापा। सबने तुरंत उसे उठा लिया। जोसेफ़ के हर्ष<sup>३</sup> का पार न रहा।

अपने संतोष के लिए जब मैं जुदा जुदा धर्मों की पुस्तकें देख रहा था तब ईसाई धर्म, इस्लाम, ज़रथुस्ती, यहूदी और हिन्दू – इतने धर्मों की पुस्तकों की मैंने अपने संतोष के लिए जानकारी प्राप्त की। यह करते हुए इन सब धर्मों की ओर मेरे मन में समभाव था, ऐसा मैं कह सकता हूँ। उस समय मुझे यह ज्ञान था ऐसा मैं नहीं कहता। ‘समभाव’ शब्द की भी पूरी जानकारी उस वक़्त मुझे नहीं होगी। लेकिन उस समय के अपने स्मरण ताज़े करता हूँ, तो मुझे इन धर्मों की टीका-टिप्पण<sup>४</sup> करने की इच्छा भी कभी हुई हो ऐसा याद नहीं आता। बल्कि उनकी पुस्तकों को धर्म की पुस्तकें समझ कर मैं आदर से पढ़ता था और सब में मूल नीति के उसूल एकसे ही देखता था। कुछ बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं। ऐसा ही हिन्दू धर्म-पुस्तकों का था। ऐसी तो कितनी ही बातें हैं, जो आज भी मेरी समझ में नहीं आती। लेकिन अनुभव से मैं देखता हूँ कि जिसे हम समझ न सकें वह ग़लत ही है, ऐसा मानने की जल्दबाज़ी करना भूल है। जो कुछ पहले मेरी समझ में नहीं आता था, वह आज दीपक की रोशनी जैसा साफ़ मालूम होता है। अपने भीतर समभाव बढ़ाने से बहुत-सी गुत्थियाँ अपने-आप सुलझ जाती हैं; और जहाँ हमें दोष ही दिखाई दे वहाँ उसे दिखाने में भी जो नम्रता और विनय<sup>५</sup> हम में होता है, उसके कारण किसी को दुःख नहीं होता।

एक उलझन शायद रहती है। पहले मैंने कहा है कि धर्म-अधर्म का भेद रहता है, और अधर्म के लिए समभाव रखने का यहाँ उद्देश्य नहीं है। अगर ऐसा ही हो तो क्या धर्म-अधर्म का निर्णय<sup>६</sup> करने में ही समभाव की सांकल टूट



नहीं जाती ? – ऐसा सवाल उठेगा; और ऐसा (धर्म-अधर्म का) निर्णय करनेवाला गलती करे यह भी मुमकिन है | लेकिन अगर हम में सच्ची अहिंसा हो, तो हम बैर-भाव से बच जाते हैं; क्योंकि अधर्म को देखते हुए भी अधर्म आचरनेवाले, बरतनेवाले के लिए तो हमारे मन में प्रेमभाव ही होगा | और इसीलिए या तो वह हमारी दृष्टि<sup>०</sup> को अपनायेगा या हमारी गलती हमें दिखाएगा; या हम दोनों एक-दूसरे के मतभेद को बरदाश्त करेंगे | आखिर, सामनेवाला आदमी अगर अहिंसक नहीं होगा, तो वह सख्ती करेगा; लेकिन अगर हम अहिंसा के सच्चे पुजारी होंगे, तो हमारी नरमी उसकी सख्ती को दूर करेगी ही इसमें शक नहीं | दूसरों की गलती के खातिर भी हमें उन्हें दुःख नहीं देना है, खुद ही दुःख उठाना है – यह सुनहला नियम जो पालता है, वह सब संकटों से उबर जाता है |

१. मसला, २. महत्त्व का, ३. खुशी, ४. नुक्ताचीनी, ५. अदब, ६. फैसला, ७. नुक्त-ए-नजर



## नम्रता

ता. ७-१०-१९३०

मंगल-प्रभात

इसका व्रतों में अलग स्थान नहीं है और न हो सकता है। अहिंसा का यह एक अर्थ है, या यों कहें कि अहिंसा के अंदर नम्रता आ जाती है। लेकिन नम्रता कोशिश करके लाने से नहीं आती। वह तो स्वभाव में ही आ जानी चाहिए। जब पहले-पहल आश्रम की नियमावली बनाई गई, तो उसका मसविदा मित्रवर्ग को भेजा गया था। सर गुरुदास बैनरजी ने नम्रता को व्रतों में स्थान देने की सूचना की थी; और उस वक़्त भी उसे व्रतों में शामिल न करने का मैंने वही कारण बताया था, जो मैं यहाँ लिख रहा हूँ। लेकिन अगरचे उसे व्रतों में स्थान नहीं है, फिर भी वह व्रतों से शायद ज़्यादा ज़रूरी हैं; ज़रूरी तो है ही। लेकिन किसी ने नम्रता मशक से – अभ्यास से पाई हो, ऐसा जानने में नहीं आया। सत्य की आदत डाली जा सकती है, दया की आदत डाली जा सकती है, (लेकिन) नम्रता की आदत डालना दंभ को आदत डालने जैसा कहा जा सकता है। यहाँ नम्रता वह चीज़ नहीं है, जो बड़े लोगों में एक-दूसरे के सम्मान के लिए सिखाई जाती है, या जिसकी तालीम दी जाती है। कोई किसी को धरती पर लम्बा होकर प्रणाम करता हो, लेकिन मन में तो उसके बारे में नफ़रत ही भरी हो, तो यह नम्रता नहीं है – चालाकी है। कोई रामनाम रटा करे, माला फेरता रहे, मुनि जैसा बनकर समाज में बैठे, पर उसके भीतर अगर स्वार्थ भरा हो, तो वह नम्र नहीं बल्कि ढोंगी है। नम्र मनुष्य खुद नहीं जानता कि कब वह नम्र होता है। सत्य वगैरह का माप हम अपने पास रख सकते हैं, लेकिन नम्रता का कोई माप नहीं होता। कुदरती नम्रता छिपी नहीं रहती। फिर भी नम्र मनुष्य खुद उसे देख नहीं सकता। वसिष्ठ और विश्वामित्र की मिसाल तो हम आश्रम में बहुत बार समझ चुके हैं। हमारी नम्रता शून्यता की हद तक जानी चाहिए। हम कुछ हैं ऐसा भूत मन में पैठा कि नम्रता गायब हो गई और हमारे सब व्रत मिट्टी में मिल गए। व्रत का पालन करनेवाला अगर मन में अपने व्रत-पालन का घमंड रखे, तो व्रतों की कीमत खो बैठे और समाज में ज़हर सरीखा हो जाए। उसके व्रत की कीमत न तो समाज करेगा, न वह खुद उसका फल भोग सकेगा। नम्रता के मानी हैं 'मैं' का बिलकुल क्षय यानी मिट जाना। सोचने से मालूम हो जाता है कि इस जगत में सारे जीव एक रजकण – ज़र्रे के बराबर भी नहीं हैं। शरीर के रूप में हम क्षणजीवी हैं। काल के अनंत चक्र में सौ साल का प्रमाण निकाला हो नहीं जा सकता। लेकिन अगर उस चक्कर में से हम निकल जाएँ – यानी 'कुछ नहीं' बन जाएँ, तो सबकुछ हो जाएँ। 'कुछ' होना यानी ईश्वर से – परमात्मा से – सत्य से अलग होना। 'कुछ' का मिट जाना यानी परमात्मा में मिल जाना। समुद्र में रही हुई बूंद समुद्र की बड़ाई<sup>१</sup> को भोगती है, लेकिन इसका उसे ज्ञान नहीं होता। ज्यों ही वह समुद्र से अलग हुई और अपनेपन<sup>२</sup> का दावा करने लगी उसी दम वह सूख गई। इस जीवन को पानी के बुलबुले की जो उपमा दी गई है, उसमें मैं ज़रा भी अतिशयोक्ति<sup>३</sup> नहीं देखता। ऐसी नम्रता – शून्यता – आदत डालने से कैसे आ सकती है? लेकिन व्रतों को सही ढंग से समझने से नम्रता अपने-आप आने लगती है। सत्य का पालन करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य अहंकारी<sup>४</sup> कैसे हो सकता है? दूसरे के लिए प्राण न्योछावर करनेवाला आदमी अपनी जगह बनाने कहाँ जाए? उसने तो जब प्राण न्योछावर करने का तय किया तभी अपनी देह को फेंक दिया था।



ऐसी नम्रता का मतलब पुरुषार्थ का अभाव (न होना) तो नहीं है ? ऐसा अर्थ हिन्दू धर्म में कर ही डाला गया है | और इसीलिए आलस को और पाखंड<sup>६</sup> को बहुतेरे स्थानों में जगह मिल गई है | सचमुच तो नम्रता के मानी हैं तीव्रतम पुरुषार्थ, सख्त से सख्त मेहनत | लेकिन यह सब परमार्थ के लिए होना चाहिए | ईश्वर खुद चौबीसों घंटे एक साँस से काम करता रहता है, अंगड़ाई लेने तक की फुरसत नहीं लेता | उसके हम हो जाएँ, उसमें हम मिल जाएँ, तो हमारा उद्यम<sup>७</sup> उसके जैसा ही अतंद्रित<sup>८</sup> हो जाएगा – होना चाहिए | समुद्र से अलग हुई बूंद के लिए हम आराम की कल्पना कर सकते हैं, लेकिन समुद्र में रहनेवाली बूंद को आराम कैसे मिल सकता है ? समुद्र को एक क्षण का, एक पल का भी आराम कहाँ है ? उसी तरह हमारा है | ईश्वर-रूपी समुद्र में हम मिल गए कि हमारा आराम गया, आराम की ज़रूरत भी गई | वही सच्चा आराम है, वही महा-अशांति में शांति है | इसीलिए सच्ची नम्रता हम से तमाम जीवों की सेवा के लिए सब-कुछ न्योछावर करने की आशा रखती है | सब-कुछ खतम होने के बाद हमारे पास न इतवार रहता, न शुक्रवार, न सोमवार | इस दशा का वर्णन करना मुश्किल है, लेकिन वह अनुभव से जानी जा सकती है | जिसने सब-कुछ न्योछावर कर दिया है, उसने इसका अनुभव किया है | हम सब इसका अनुभव कर सकते हैं | इसका अनुभव करने के इरादे से हम आश्रम में इकट्ठा हुए हैं | सब व्रत, सब कामकाज इस दशा का अनुभव करने के लिए हैं | यह या वह, कुछ न कुछ करते करते वह दशा किसी दिन हमारे हाथ लग जाएगी | सिर्फ़ उसी को ढूँढ़ने जाने से वह मिलनेवाली नहीं है |

१. खुदगर्जी, २. महत्ता, ३. खुदी, ४. मुबालिगा, ५. मग़रूर, घमंडी, ६. ढोंग, ७. कामकाज, ८. नागाफ़िल, जाग्रत



१३

## स्वदेशी

प्रवचनों में 'स्वदेशी' पर (जेल से) लिखना मैं रहने ही दूँगा; (क्योंकि) राजनीति से संबंध रखनेवाले विषय को न छेड़ने का मेरा जो संकल्प है, उसमें ऐसा करने से कुछ कमी आ जाएगी | स्वदेशी के बारे में सिर्फ धार्मिक दृष्टि से लिखने पर भी कुछ ऐसा लिखना होगा, जिसका राजनीति के साथ परोक्ष (कुछ दूर का) संबंध हो |

१४

## स्वदेशी-व्रत

स्वदेशी-व्रत इस युग का एक महाव्रत है | जो चीज आत्मा का धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणों से आत्मा को जिसका भान नहीं रहा, उसके पालन के लिए व्रत लेने की ज़रूरत होती है | जो स्वभाव से मांस नहीं खानेवाला है, उसे मांस न खाने का व्रत नहीं लेना पड़ता | मांस उसके लिए लालच नहीं है; इतना ही नहीं, मांस को देखते ही उसे उलटी हो जाएगी |

स्वदेशी आत्मा का धर्म है, लेकिन वह बिसर गया है | इसीलिए उसके बारे में व्रत लेने की ज़रूरत है | आत्मा के लिए स्वदेशी का आखिरी अर्थ है सारे स्थूल यानी दुनियावी संबंधों से पूरा छुटकारा | देह भी उसके लिए परदेशी है, क्योंकि देह दूसरी आत्माओं के साथ एकता साधने में उसे रोकती है, उसके मार्ग का रोड़ा बनती है | तमाम जीवों के साथ एकता साधते हुए स्वदेशी-धर्म को जाननेवाला और पालनेवाला आदमी देह को भी छोड़ देगा | यह अर्थ सही हो तो हम आसानी से समझ जाएँगे कि अपने पास के लोगों की सेवा में लगे रहना, ओतप्रोत होना यह स्वदेशी-धर्म है | ऐसी सेवा करने में दूर के लोग रह जाते हैं, या उनको नुकसान पहुँचता है, ऐसा आभास होना संभव है | लेकिन वह सिर्फ आभास ही होगा | स्वदेशी की शुद्ध सेवा करते हुए परदेशी की भी शुद्ध सेवा होती ही है | जैसा पिण्ड में वैसा ब्रह्मांड में |

इससे उलटा, दूर की सेवा करने का मोह रखने से वह तो होती नहीं और पड़ोसी की सेवा भी रह जाती है | मुझ पर आधार रखनेवाले कुटुम्ब के लोगों को या गाँव में रहनेवालों को मैं अगर छोड़ दूँ तो मुझ पर उनका जो आधार होता है वह चला जाता है | दूर के लोगों की सेवा करने जाने से जिसका धर्म उनकी सेवा करने का है वह अपने धर्म को भूलता है | संभव है वह दूर के लोगों को झूठा लाड़-प्यार करता हो; ऐसा करके वहाँ

का वातावरण<sup>३</sup> वह बिगाड़ता है और अपने यहाँ का वातावरण तो वह बिगाड़ कर ही गया था | यों हर तरह से उसने नुकसान ही पहुँचाया | ऐसी अनगिनत मिसालों का खयाल कर के स्वदेशी-धर्म साबित किया जा सकता है | इसीलिए 'स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' (अपना धर्म पालते हुए मौत आए तो अच्छा, लेकिन दूसरे का धर्म खतरनाक होता है) वचन निकला है | उसका अर्थ इस तरह ज़रूर किया जा सकता है : 'स्वदेशी का पालन करते हुए मौत हो जाए तो भी अच्छा है, पर परदेशी तो खतरनाक ही है |' स्वधर्म यानी स्वदेशी |



स्वदेशी को न समझने से ही गड़बड़ी पैदा होती है | कुटुम्ब पर मोह रखकर मैं उसे झूठा लाड़-प्यार करूँ, उसके खातिर धन चुराऊँ, दूसरी चालें चलूँ, यह स्वदेशी नहीं है | मुझे तो उसके प्रति अपना धर्म पालन करना है | उस धर्म को खोजते हुए और उसका पालन करते हुए मुझे सर्वव्यापी, सब जगह फैला हुआ धर्म मिल जाएगा | अपने धर्म के पालन से दूसरे धर्मवाले को या दूसरे धर्म को नुकसान पहुँचता ही नहीं, और न पहुँचना चाहिए | अगर पहुँचे तो हमारा माना हुआ धर्म स्वधर्म नहीं बल्कि स्वाभिमान<sup>१</sup> है और इसीलिए वह तजने लायक है |

स्वदेशी का पालन करते हुए कुटुम्ब की कुरबानी भी करनी पड़ती है | लेकिन ऐसा करना पड़े तो उसमें भी कुटुम्ब की सेवा होनी चाहिए | जैसे खुद को कुरबान करके हम खुद की रक्षा कर सकते हैं, उसी तरह हो सकता है कि कुटुम्ब को कुरबान करके हम कुटुम्ब की रक्षा कर सकते हों | मान लीजिए कि मेरे गाँव में महामारी<sup>२</sup> फैली है | उस बीमारी में फँसे हुए लोगों की सेवा में मैं अपने को, अपनी पत्नी को, पुत्रों को और पुत्रियों को अगर लगाऊँ और उस बीमारी में फँसकर सब मौत की शरण में चले जाएँ, तो मैंने कुटुम्ब का नाश<sup>३</sup> नहीं किया, मैंने उसकी सेवा ही की है | स्वदेशी में कोई स्वार्थ<sup>४</sup> नहीं है; अगर है तो वह शुद्ध स्वार्थ है | शुद्ध<sup>५</sup> स्वार्थ यानी परमार्थ; शुद्ध स्वदेशी यानी परमार्थ की आखिरी हद |

इस विचारधारा के आधार पर मैंने खादी में सामाजिक<sup>६</sup> शुद्ध स्वदेशी-धर्म देखा है | सब समझ सकें ऐसा इस युग में, इस देश में सबको पालने की बहुत जरूरत हो ऐसा कौनसा स्वदेशी-धर्म हो सकता है ? जिसके सहज<sup>७</sup> पालन से भी हिन्दुस्तान के करोड़ों की रक्षा हो सकती है, ऐसा कौनसा स्वदेशी-धर्म है ? जवाब मिला – चरखा या खादी |

इस धर्म के पालन से परदेशी मिलवालों को नुकसान होता है, ऐसा कोई न माने | अगर चोर को चुराई हुई चीज़ लौटानी पड़े या चोरी करने से रोका जाय, तो उसमें उसे नुकसान नहीं है, लाभ है | अगर पड़ोसी शराब पीना या अफीम खाना छोड़ दे, तो उससे कलाल को या अफीम के दुकानदार को नुकसान नहीं, लाभ है | अयोग्य<sup>८</sup> ढंग से जो (अपना) अर्थ<sup>९</sup> साधते हों, उनके उस अनर्थ<sup>१०</sup> का

अगर नाश हो, तो उससे उन्हें और जगत को लाभ ही है |

लेकिन जो लोग चरखे से जैसे-तैसे सूत कातकर और खादी पहन-पहनाकर यह मान लेते हैं कि स्वदेशी-धर्म का पूरा पालन हो गया, वे बड़े मोह में डूबे हुए हैं | खादी सामाजिक स्वदेशी की प्रथम सीढ़ी है, वह स्वदेशी-धर्म की आखिरी हद नहीं है | ऐसे खादीधारी देखे गए हैं, जो और सब चीज़ें परदेशी खरीदते हैं | वे स्वदेशी-धर्म का पालन नहीं करते | वे तो सिर्फ़ चालू बहाव में बह रहे हैं | स्वदेशी-व्रत का पालन करनेवाला हमेशा अपने आसपास निरीक्षण<sup>११</sup> करेगा और जहाँ जहाँ पड़ोसियों की सेवा की जा सके, यानी जहाँ जहाँ उनके हाथ का तैयार किया हुआ जरूरत का माल होगा वहाँ दूसरा माल छोड़कर उसे लेगा | फिर भले ही स्वदेशी चीज़ पहले-पहल महँगी और घटिया दर्जे की हो | व्रतधारी उसे सुधारने की कोशिश करेगा; स्वदेशी चीज़ खराब है इसीलिए कायर बनकर परदेशी का इस्तेमाल करने नहीं लग जाएगा |

लेकिन स्वदेशी-धर्म जाननेवाला अपने कुँ में डूब नहीं मरेगा | जो चीज़ स्वदेश में नहीं बनती या बड़ी तकलीफ़ से बन सकती हो, उसे परदेश के द्वेष (डाह) के कारण वह अपने देश में बनाने लग जाए, तो उसमें स्वदेशी-



धर्म नहीं है | स्वदेशी-धर्म को पालनेवाला परदेशी का द्वेष कभी नहीं करेगा | इसीलिए पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है | वह संकुचित १५ धर्म नहीं है | वह प्रेम से – अहिंसा से – निकला हुआ सुंदर धर्म है |

१. ज्ञान, सुध, २. झूठा खयाल, ३. फिजा, ४. अपना गरूर, ५. वबा, ६. खात्मा, ७. खुदगर्जी, ८. पाक, ९. समाजी, १०. थोड़ा, ११. नाजायज, १२. मतलब, १३. बुरा मतलब, १४. निगाह, १५. तंग खयाल का.



## व्रत की ज़रूरत

ता. १४-१०-१९३०

मंगल-प्रभात

व्रत के महत्त्व<sup>१</sup> के बारे में मैंने इस लेखमाला में जहाँ तहाँ छुटपुट लिखा होगा | लेकिन जीवन को गढ़ने के लिए व्रत कितने ज़रूरी हैं, इस पर यहाँ सोचना मुनासिब लगता है | व्रतों के बारे में लिख चुका हूँ, इसीलिए अब हम उन व्रतों की ज़रूरत के बारे में सोचें |

ऐसा एक संप्रदाय<sup>२</sup> है, और वह बलवान भी है, जो कहता है : ‘अमुक नियमों का पालन करना ठीक है, लेकिन उनके लिए व्रत लेने की ज़रूरत नहीं है; इतना ही नहीं, वह मन की कमज़ोरी को बताता है और नुक़सान करनेवाला भी हो सकता है | और, व्रत लेने के बाद ऐसा नियम अड़चनरूप लगे या पापरूप लगे, तो भी उससे चिपके रहना पड़े यह तो सहन नहीं हो सकता |’ वे कहते हैं : ‘मिसाल के तौर पर शराब न पीना अच्छा है, इसीलिए शराब नहीं पीनी चाहिए | लेकिन कभी पी ली गई तो क्या हुआ ? दवा के तौर पर तो उसे पीना ही चाहिए | इसीलिए उसे न पीने का व्रत लेना तो गले में फंदा डालने के बराबर है | और जैसा शराब के बारे में है, वैसा और चीज़ों के बारे में है | भले के लिए हम झूठ भी क्यों न बोलें ?’ मुझे इन दलीलों में कोई वजूद मालूम नहीं होता | व्रत का अर्थ है अडिग निश्चय | अड़चनों को पार करने के लिए ही तो व्रतों की आवश्यकता है | अड़चन बरदाश्त करते हुए भी जो टूटता नहीं, वही अडिग निश्चय माना जाएगा | ऐसे निश्चय के बग़ैर मनुष्य लगातार ऊपर चढ़ ही नहीं सकता, ऐसी गवाही सारी दुनिया का अनुभव देता है | जो आचरण पापरूप हो, उसके निश्चय को व्रत नहीं कहा जाएगा | वह राक्षसी – शैतानी वृत्ति है | और जो निश्चय पहले पुण्यरूप लगा हो और आखिर में पापरूप साबित हो, उसे छोड़ने का धर्म ज़रूरी हो जाता है | लेकिन ऐसी चीज़ के बारे में कोई व्रत नहीं लेता, और न लेना चाहिए | सब कोई जिसे धर्म मानते हैं, लेकिन जिसे आचरण की हमें आदत नहीं पड़ी है, उसके लिए व्रत लेना चाहिए | ऊपर की मिसाल में तो पाप का सिर्फ़ आभास<sup>३</sup> ही हो सकता है | ‘सच कहने से किसी को नुक़सान पहुँचेगा तो ?’ ऐसा विचार सत्यवादी करने नहीं बैठेगा | सत्य से इस जगत में किसी का नुक़सान नहीं होता, न होनेवाला है, ऐसा विश्वास<sup>४</sup> वह रखे | उसी तरह शराब पीने के बारे में | या तो उस व्रत में दवा के तौर पर शराब लेने की छूट रखनी चाहिए या छूट न रखी हो तो व्रत लेने के पीछे शरीर का खतरा उठाने का निश्चय होना चाहिए | दवा के तौर पर भी शराब न पीने से देह छूट जाए तो भी क्या हुआ ? शराब पीने से देह रहेगी ही, ऐसा

पट्टा कौन लिखवा सकता है ? और, उस क्षण देह टिकी, पर दूसरे ही क्षण किसी और कारण से छूट गई, तो उसकी जिम्मेवारी किसके सिर होगी ? इससे उलटा, देह छूट जाए तो भी शराब न पीने की मिसाल का शराब की लत में फंसे हुए लोगों पर चमत्कारी<sup>५</sup> असर होगा, यह दुनिया का कितना बड़ा फ़ायदा है ? ‘देह छूटे या रहे, मुझे तो अपना धर्म पालना ही है’ – ऐसा भव्य – शानदार निश्चय करनेवाला मनुष्य ही किसी समय ईश्वर की झाँकी कर सकता है | व्रत लेना कमज़ोरी की निशानी नहीं है, बल्कि बल की निशानी है | अमुक बात करना ठीक हो तो फिर उसे करना



ही है, इसका नाम है व्रत | उसमें ताकत है | फिर उसे व्रत न कहकर किसी और नाम से पहचानें तो उसमें कोई हर्ज नहीं | लेकिन 'जहाँ तक हो सकेगा करूँगा' ऐसा कहनेवाला अपनी कमजोरी का या अभिमान का दर्शन कराता है; भले वह खुद उसे नम्रता कहे | उसमें नम्रता की गंध भी नहीं है | 'जहाँ तक हो सकेगा' ऐसा वचन शुभ निश्चयों में ज़हर जैसा है, यह मैंने तो अपने जीवन में और दूसरे बहुतों के जीवन में देखा है | 'जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक' करने के मानी हैं पहली ही अड़चन आने पर गिर जाना | 'जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक सच्चाई का पालन करूँगा' – इस वाक्य<sup>१</sup> का कोई अर्थ नहीं है | व्यापार में 'हो सका तो फलां तारीख को फलां रकम चुकाने की' किसी चिट्ठी का कहीं भी चेक या हुंडी के रूप में स्वीकार नहीं होगा | उसी तरह जहाँ तक हो सके वहाँ तक सत्य का पालन करनेवाले की हुंडी ईश्वर की दुकान में नहीं भुनाई जा सकती |

ईश्वर खुद निश्चय की, व्रत की संपूर्ण मूर्ति है | उसके कायदे में से एक अणु, एक ज़रा भी हटे, तो वह ईश्वर न रह जाए | सूरज बड़ा व्रतधारी है, इसीलिए जगत का काल<sup>२</sup> तैयार होता है और शुद्ध पंचांग (जंत्री) बनाए जा सकते हैं | सूर्य ने ऐसी साख जमाई है कि वह हमेशा उगा है और हमेशा उगता रहेगा, और इसीलिए हम अपने को सलामत मानते हैं | तमाम व्यापार का आधार एक टेक पर रहता है | व्यापारी एक-दूसरे से बँधे हुए न रहें, तो व्यापार चले ही नहीं | यों व्रत सर्वव्यापक, सब जगह फैली हुई चीज़ दिखाई देता है | तब फिर जहाँ अपना जीवन गढ़ने का सवाल हो, ईश्वर के दर्शन करने का प्रश्न हो, वहाँ व्रत के बग़ैर कैसे चल सकता है ? इसीलिए व्रत की ज़रूरत के बारे में हमारे दिल में कभी शक पैदा ही न होना चाहिए |

१. अहमियत, २. फिरका, ३. गलत खयाल, ४. यक़ीन, ५. जादुई, हैरतअंगेज़, ६. जुमला, ७. वक़्त, समय |



## परिशिष्ट

[‘मंगल-प्रभात’ के पढ़नेवालों के लिए उपयोगी होगा, ऐसा मानकर आश्रम की नियमावली से नीचे का हिस्सा यहाँ दिया गया है ]]

### १. सत्य

**साधारण** व्यवहार-कारोबार में झूठ न बोलना या नहीं बरतना इतना ही सत्य का अर्थ नहीं है | लेकिन सत्य ही परमेश्वर है और उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है | उस सत्य की खोज और पूजा के लिए ही दूसरे सब नियमों की ज़रूरत रहती है और उसी में से वे निकले हैं | इस सत्य के उपासक, पुजारी अपनी कल्पना की देश की भलाई के लिए भी झूठ न बोलें, न बरतें | सत्य के खातिर वे प्रह्लाद की तरह माता-पिता आदि बुजुर्गों की आज्ञा का भी अदब<sup>१</sup> से भंग करने में धर्म समझें |

### २. अहिंसा

प्राणियों को जान से न मारना इतना ही इस व्रत के लिए काफ़ी नहीं है | अहिंसा का मतलब है बहुत छोटे जीव-जंतुओं से लेकर मनुष्य तक सब जीवों के लिए समभाव – बराबरी का, अपनेपन का भाव | इन व्रतों का पालन करनेवाला घोर अन्याय<sup>२</sup> करनेवाले पर भी गुस्सा न करे, लेकिन उस पर प्रेमभाव रखे, उसका भला चाहे और भला करे | लेकिन प्रेम करते हुए भी वह अन्याय करनेवाले के अन्याय के बस में न हो, उसके अन्याय का विरोध करे और ऐसा करते हुए जो कष्ट<sup>३</sup> वह दे, उसे धीरज के साथ और अन्याय करनेवाले से द्वेष किए बगैर सहन करे |

### ३. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के पालन के बिना ऊपर के व्रतों का पालन नामुमकिन है | ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरुष पर बुरी निगाह न डाले इतना ही बस नहीं है, लेकिन मन से भी विषयों का विचार या भोग न करे | और विवाहित<sup>४</sup> हो तो वह अपनी स्त्री या अपने पति के साथ विषय-भोग<sup>५</sup> न करे, लेकिन उसे मित्र समझ कर उसके साथ निर्मल संबंध रखे | अपनी या दूसरी स्त्री को या अपने पति या दूसरे पुरुष को विकार से छूना या उसके साथ विकारी बातचीत करना या दूसरी विकारी चेष्टा<sup>६</sup> करना भी स्थूल<sup>७</sup> ब्रह्मचर्य का भंग है | पुरुष-पुरुष के बीच या स्त्री-स्त्री के बीच या दोनों की किसी चीज़ के बारे में विकारी चेष्टा भी स्थूल ब्रह्मचर्य का भंग है |

### ४. अस्वाद

आदमी जब तक जीभ के रसों को नहीं जीतता, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन बहुत मुश्किल है, ऐसा अनुभव होने से अस्वाद को एक अलग व्रत माना गया है | भोजन सिर्फ़ शरीर को निभाने के लिए ही करना चाहिए, भोग के लिए हरगिज़ नहीं | इसीलिए उसे दवा समझकर संयम से खाने की ज़रूरत है | इस व्रत का पालन करनेवाला विकार पैदा करनेवाले मसालों वगैरह को छोड़ दे | मांस खाना, शराब पीना, तम्बाकू खाना, भांग पीना वगैरह की आश्रम में मनाही है | इस व्रत में स्वाद के लिए दावत की या भोजन के आग्रह की मनाही है |



#### ५. अस्तेय (चोरी न करना)

दूसरे की चीज़ उसकी इजाज़त के बिना न लेना, इतना ही इस व्रत के पालन के लिए काफ़ी नहीं है। जो चीज़ काम के लिए मिली हो उसका उससे दूसरा उपयोग करना या जितनी मुद्दत के लिए मिली हो उससे ज़्यादा मुद्दत तक उसे काम में लाना भी चोरी है।

इस व्रत के मूल में सूक्ष्म सत्य तो यह रहा है कि परमात्मा प्राणियों के लिए रोज़ की ज़रूरत की चीज़ें ही रोज़ पैदा करता है और उन्हें देता है। उससे ज़्यादा ज़रा भी पैदा नहीं करता। इसीलिए आदमी अपनी कम से कम ज़रूरत से ज़्यादा जो कुछ भी लेता है वह चोरी का लेता है।

#### ६. अपरिग्रह (जमा न रखना)

अपरिग्रह अस्तेय के भीतर ही आ जाता है। बेज़रूरी चीज़ जैसे ली नहीं जा सकती, वैसे उसका संग्रह भी नहीं हो सकता। इसीलिए जिस खुराक या सरोसामान की ज़रूरत नहीं है, उसका संग्रह इस व्रत का भंग है। जिसे कुरसी के बिना चल सकता है वह कुरसी न रखे। अपरिग्रही मनुष्य अपने जीवन को दिनोंदिन सादा करता जाए।

#### ७. ज्ञात-मेहनत

अस्तेय और अपरिग्रह के पालन के लिए ज्ञात-मेहनत का नियम ज़रूरी है। और हर मनुष्य अपना गुज़ारा शरीर की मेहनत से करे तभी वह समाज के और अपने द्रोह से बच सकता है। जिनका शरीर काम देता है और जो सयाने हो गए हैं, ऐसे स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि हाथ से निपटारा जा सकनेवाला अपना रोज़ का सारा काम वे खुद ही निपटा लें और नाहक दूसरे की सेवा न लें। लेकिन जब बच्चों की, दूसरे अपाहिज लोगों की और बूढ़े स्त्री-पुरुषों की सेवा करने का मौक़ा आए, तब उसे करना समाजी जिम्मेवारी समझनेवाले हर इन्सान का धर्म है।

इस आदर्श को सामने रखकर आश्रम में जहाँ मज़दूर रखे बिना काम ही नहीं चल सकता वहीं मज़दूर रखे जाते हैं, और उनके साथ मालिक-नौकर की तरह नहीं बरता जाता।

#### ८. स्वदेशी

मनुष्य सब-कुछ कर सकनेवाला, सर्वशक्तिमान प्राणी नहीं है। इसीलिए वह अपने पड़ोसी की सेवा करने में जगत की सेवा करता है। इस भावना का नाम स्वदेशी है। अपने पास वालों की सेवा को छोड़कर जो दूर वालों की सेवा करने या लेने दौड़ता है, वह स्वदेशी का भंग करता है। इस भावना के पोषण से संसार सुव्यवस्थित रह सकता है। इसके भंग में अव्यवस्था रही है। इस नियम के मुताबिक जहाँ तक हो सके, हम अपने पड़ोसी की दुकान के साथ व्यवहार-कारोबार रखें; देश में जो चीज़ बनती हो या आसानी से बन सकती हो, उसे हम परदेश से न लाएँ। स्वदेशी में स्वार्थ के लिए जगह नहीं है। इन्सान खानदान के, खानदान शहर के, शहर देश के और देश जगत के कल्याण के लिए कुरबान हो जाए।



## ९. अभय

सत्य, अहिंसा वगैरह व्रतों का पालन निडरता के बिना नामुमकिन है। और आजकल जब कि सब जगह डर फैल रहा है, निडरता का चिंतन और उसकी तालीम बहुत जरूरी होने से उसे व्रतों में स्थान दिया गया है। जो आदमी सत्यपरायण<sup>१</sup> रहना चाहे, वह न तो जात-पांत से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न गरीबी से डरे और न मौत से डरे।

### १०. अस्पृश्यता-निवारण (छूतछात मिटाना)

हिन्दू धर्म में छुआछूत के रिवाज ने जड़ पकड़ ली है। उसमें धर्म नहीं है बल्कि अधर्म है, ऐसा हमारा मानना है। इसीलिए अस्पृश्यता-निवारण को नियमों में स्थान दिया गया है। अछूत माने जानेवालों के लिए दूसरी जाति वालों के समान ही आश्रम में स्थान है।

आश्रम जातिभेद को नहीं मानता। जातिभेद से हिन्दू धर्म को नुकसान हुआ है, ऐसी उसकी मान्यता है। उसमें रही हुई ऊँच-नीच की और छूतछात की भावना अहिंसा-धर्म को मार डालनेवाली है। आश्रम वर्णाश्रम-धर्म को मानता है। उसमें बताई वर्ण-व्यवस्था सिर्फ धंधे के मुताबिक है, ऐसा लगता है। इसीलिए वर्ण-नीति पर चलनेवाला आदमी माँ-बाप के धंधे से रोजी कमाकर बाक्री का समय शुद्ध ज्ञान लेने में और उसे बढ़ाने में खर्च करे। स्मृतियों की आश्रम-व्यवस्था जगत का भला करनेवाली है। लेकिन वर्णाश्रम-धर्म को मानने पर भी आश्रम का जीवन गीता में बताए हुए व्यापक<sup>२</sup> और भावना-प्रधान (भावनाशील, जड़ नहीं) संन्यास के आदर्श को लेकर बना हुआ है, इसीलिए आश्रम में वर्णभेद के लिए जगह नहीं है।

### ११. सहिष्णुता (बरदाश्त)

आश्रम का यह मानना है कि जगत के आज के मशहूर धर्म सत्य को प्रगट करनेवाले हैं। लेकिन वे सब अधूरे आदमी के ज़रिए प्रगट हुए हैं, इसीलिए सब में अधूरेपन की या असत्य की मिलावट हो गई है। इसीलिए जैसे हम अपने धर्म की इज्जत करते हैं, उसी तरह हमें दूसरों के धर्म की इज्जत करनी चाहिए। ऐसी सहिष्णुता जहाँ हो वहाँ एक-दूसरे के धर्म का विरोध<sup>३</sup> मुमकिन नहीं है, न दूसरे धर्मवालों को अपने धर्म में लाने की कोशिश मुमकिन है, लेकिन सब धर्मों में रहे हुए दोष<sup>४</sup> दूर हों ऐसी ही प्रार्थना और ऐसी ही भावना<sup>५</sup> हमेशा बनी रहनी चाहिए।

१. विनय से, २. बेइन्साफ़ी, ३. तकलीफ़, ४. शादीशुदा, ५. शहवत, ६. हरकत, ७. बाहरी, मोटा, ८. बेवफ़ाई, ९. मक़सद, १०. बाक्रायदा, ११. बेक्रायदगी, १२. खुदग़रजी, १३. भला, १४. सच्चाईपरस्त, १५. तंग नहीं, १६. मुखातिफ़त, १७. खामियाँ, १८. विचार, चाह



## शब्दों के अर्थ

अंश – हिस्सा	अस्वाद – जीभ का चटकारा जीतना, जायके का मज्जा न लेना, जायके के मजे का गुलाम न होना
अटूट – लाजवाल	अस्वाद – बेलज्जती
अतंद्रित – नागाफ़िल	अहंकारी – मगरूर, घमंडी
अध्याय – बाब	आग्रह – जोर देना, इसरार
अनंतगुनी – बेहद	आचरना – बरतना
अनर्थ – बुरा काम	आत्महत्या – खुदकुशी
अनुभव – तजुरबा	आत्मा – रूह
अनुमान – अटकल, अंदाज़ा	आत्मार्थी – आत्मा का कल्याण चाहनेवाला
अन्याय – बेइन्साफ़ी	आत्यंतिक – बिलकुल, आखिरी, हद दरजे का
अपंग – अपाहिज	आदर्श (सं.) – मक़सद
अपरिग्रह – जमा न रखना	आदर्श (वि.) – नमूनेदार
अभय – नहीं डरना	आधार – आसरा, सहारा
अभ्यास – मशक, आदत	आभास – वहम, झूठा खयाल, झूठा नज़ारा
अमुक – फ़लां	आराधना – भक्ति
अमूर्छ - नागाफ़िल	आरोग्य – तंदुरुस्ती
अमूर्छित - नागाफ़िल	आरोग्य-पोषक – तंदुरुस्ती बढ़ाने वाला, सेहतबख़्श
अयोग्य – नाजायज़	आवरण – ढक्कन, पर्दा
अल्प – नाचीज़, छोटा, थोड़ा	आवृत्ति – एडिशन
अवधूत – मस्ताना, फ़क़ीराना	इच्छा – मरज़ी
अव्यवस्था – बेक्रायदगी, बेइन्तज़ामी	इन्द्रिय – हवास
अस्तेय – चोरी न करना	उत्तरोत्तर – बराबर
अस्पृश्यता-निवारण – अछूतपन मिटाना	उत्पत्ति – पैदाइश



उदासीनता – लापरवाही, बेपरवाही

उद्देश्य – मक़सद

उपकार – एहसान

उपद्रव करना – सताना

उपयोग – इस्तेमाल

उपवास – रोज़ा, फ़ाक्रा

उपाय – तरीक़ा

उपासक – पुजारी

उबरना – बचना, छूटना

उलटी – क़ै

एकांगी – इकतरफ़ा

ओतप्रोत – लगा हुआ, मशगूल

करुणा – रहम

कर्तव्य – फ़र्ज़

काम – नफ़्सपरस्ती, शहवत

कामधेनु – चाहा हुआ देनेवाली गाय

कायरता – बुज़दिली

कुटुम्ब – ख़ानदान

क्रोध – गुस्सा

क्षय – मिट जाना

क्षीण – कम, घटा हुआ

घातक – मार डालनेवाला

चमत्कारी – जादुई, हैरतअंगेज़

चिंतन – गौर, गौरोफ़िक़्र, चिन्तवन

प्रतिज्ञा – सौगंद, क़सम;

चेष्टा – हरकत; छनजीवी – क्षणिक, फ़ानी

जड़ – सुस्त

जड़ता – सुस्ती

जनन-इन्द्रिय – जिससे बच्चा पैदा होता है वह इन्द्रिय

जातिभेद – जात जात के बीचफ़र्क़; ज्ञान – इल्म

ज्ञानपूर्वक – समझ-बूझकर

टीका-टिप्पणी – नुक्ताचीनी

तंत्र – हुकूमत

तीव्रतम पुरुषार्थ – सख़्त से सख़्त मेहनत

तुच्छ – नाचीज़

दावत – ज्योनार

दिगम्बर – नंगा

दिव्य चक्षु – भीतर की आँख, ज्ञान की आँख

दुष्ट – सबसे ख़राब

दृढ़ता – मज़बूती

दृष्टांत – मिसाल

दृष्टि – नुक्ता-ए-नज़र

दोष – ख़राबी, नुक्स, खामी

द्रोह – बेवफ़ाई

द्वन्द्व – जोड़ी

द्वेष – वैर

धार्मिकता – दीनदारी

नम्रता – आजिज़ी इक़सार

नाश – ख़ात्मा; निंदा – बदगोई

निरपवाद – ग़ैर-मुस्तसान, जिससे छूट न मिले



प्रदेश - इलाका	निराशा – मायूसी, नाउम्मेदी
प्रभात – पौ, सवेरा, भोर	निरीक्षण – निगाह
प्रमाण – मिक्कदार, हिस्सा	निरोगी – तंदुरुस्त
प्रमाण में – मुक्काबले में	निर्णय – फ़ैसला
प्रयोग – आजमाइश	निर्दोष – बेदाग़, जिसमें कुछ खराबी न हो
प्रवचन – मानी समझानेवाली तक़रीर	निश्चय – पक्का इरादा
प्रवृत्ति – हलचल, कारोबार, कामकाज	निश्चय करना – ठान लेना, पक्का इरादा करना
पंचांग – जंत्री	प्रसाद – किरपा
पतिव्रता – शौहरपरस्त	प्राणी – जीव
पत्नीव्रती – बीबीपरस्त	प्रायश्चित – कफ़ारा
परम – सबसे आला	प्रेरणा देना – किसी को किसी काम में लगाना, अपना खयाल या अपनी बात दूसरे में पैदा करना
परम अर्थ – आला काम, आला मक़सद	बंधन – कैद
परमार्थ – परोपकार, दूसरे का भला, मोक्ष	बाधा – रुकावट
परोक्ष – सीधा नहीं	ब्रह्मांड – विश्व, खल्क
पाखंड – ढोंग	भंडार – रसदखाना
पातकी – पापी	भंवर – जहाँ पानी गोल चक्कर में घूमता है, भौर
पारसमणि – ऐसी मणि जिसे छूने से लोहा सोना बन जाए	भरपेट – पेट भर जाय उतना
पावन – पाक	भविष्य – मुस्तक़विल
पिंड – शरीर, देह	भव्य – शानदार
पुरुषार्थ – मेहनत, कोशिश;	भान – ज्ञान, सुध, ख़बर, खयाल
पोषण – परवरिश	भावना – खयाल, चाह, जज़्बा
भावनाप्रधान – भावनाशील, जड़ नहीं, जज़्बातवाला	रस – मज़ा, भोग की लालसा, भोग की तेज़ इच्छा; छह
भाष्य – ब्योरेवार टीका, तफ़सीर	रस – कड़वा, तीखा, मीठा, खारा, खट्टा, कसैला



भेद – फ़र्क़	राक्षसी – शैतानी
भोग-विलास – चैनबाजी; चैन अमन, एश-आराम	राजनीतिक – सियासी
भ्रष्ट होना – बिगड़ना	रामबाण – अकसीर, बेकार नहीं जानेवाला
मंगल – कल्याणकारी	राय – राजा
मनुष्यप्राणी – इन्सान	राय-रंक – अमीरोगरीब
महत्ता – अहमियत	राष्ट्रीय – क्रौमी
महामारी – वबा	लक्षण – सिफ़त, पहचान, निशानी, गुण
महिमा – बड़ाई	वरण करना – पसंद करना
मात्रा – मिक्कदार, एक बार लेने का प्रमाण (दवा की खुराक)	वाक्य – जुमला
मान – इज़्जत, आदर	वातावरण – फ़िज़ा
मानसिक – मन की (मन से की हुई)	विकार – मन या शरीर का बिगाड़, नफ़्स, बुरा ख़याल
मिथ्याचारी – ढोंगी, जिसका आचार बेकार साबित होता है	विचारणा – विचार करना
मुक्ति – आज्ञादी, नजात	विचारधारा – विचारों का सिलसिला
मूढ़ – मुरख, अज्ञान	विचारशील – सोच-विचार करने वाला
मूल सिद्धांत – बुनियादी उसूल	विचित्र – अजीब
रंक – निर्धन	विद्वान – आलिम
रजकण – ज़र्रा	विनय – अदब
रत्न-चिंतामणि – ऐसा रतन जो जिस चीज़ की इच्छा हो वह दे	विमुख करना – फेर लेना
विरोध – मुखालिफ़त	संकट – मुसीबत
विवाहित – शादीशुदा	संकल्प – पक्का इरादा
विवेक – तमीज़, भलेबुरे की परख	संकुचित – तंग ख़याल का
विशाल – वसीअ	संग्रह – मजमूआ, जमाव
विश्वास – यक़ीन, भरोसा	संपूर्ण – पूरा-पूरा



विषय – मसला	संप्रदाय – फ़िरका
विषय – नफ़स	संयम – क़ाबू
विषय-भोग – शहवत	संस्कृति – तमद्दुन
वीर्य – धातु, घात, मनी	संस्था – अंजुमन
वृत्ति – फ़ितरत	सत्यपरायण – सच्चाईपरस्त
व्यभिचारी – बेवफ़ा	सफल – कारगर
व्यवहार – कारोबार	सभ्यता – तहजीब
व्याख्या – तशरीह	समभाव – बराबरी का भाव
व्यापक – तंग नहीं, वसीअ	समर्थ – ताक़तवर
व्रत – अहद, नैम, नियम	सर्वशक्तिमान – सब कुछ कर सकनेवाला
व्रतधारी – व्रत पालनेवाला	सहज – कुदरती तौर पर, स्वाभाविक, आसानी से, थोड़ा
शाप – बददुआ	सहिष्णुता – बरदाश्त
शाश्वत – हमेशा का, क़ायम-ओ-दायम, लाफ़ानी	साक्षात्कार – दर्शन, दीदार
शुद्ध – सही	साधन – ज़रिया
शून्य – सिफ़र	सार-असार – दम-बेदम
शून्यता – सिफ़र, बेखुदी	साधना – मकसद को पाने की कोशिश
शोक – रंज, गम	साध्य – मकसद
शोभना – फवना	सामग्री – सामान
श्रेष्ठ – सबसे अच्छा	सामाजिक – समाजी
	सुव्यवस्थित – बाक़ायदा
	सूक्ष्म – बारीक
	स्थूल – मोटा, बाहरी
	स्मृति – धर्मशास्त्र, धर्म की पुस्तक
	स्वाद – लज़्जत, ज़ायका



स्वाभिमान – अपना गरूर

स्वामी – मालिक

स्वार्थ – खुदगर्जी

स्वार्थी – मतलबी

स्वीकार – तसलीम, कबूल

हर्ष – बड़ी खुशी

होमना – निछावर करना

